कुरुक्षेत्र

फरवरी 1988

मूल्य : 2.00 रुपये

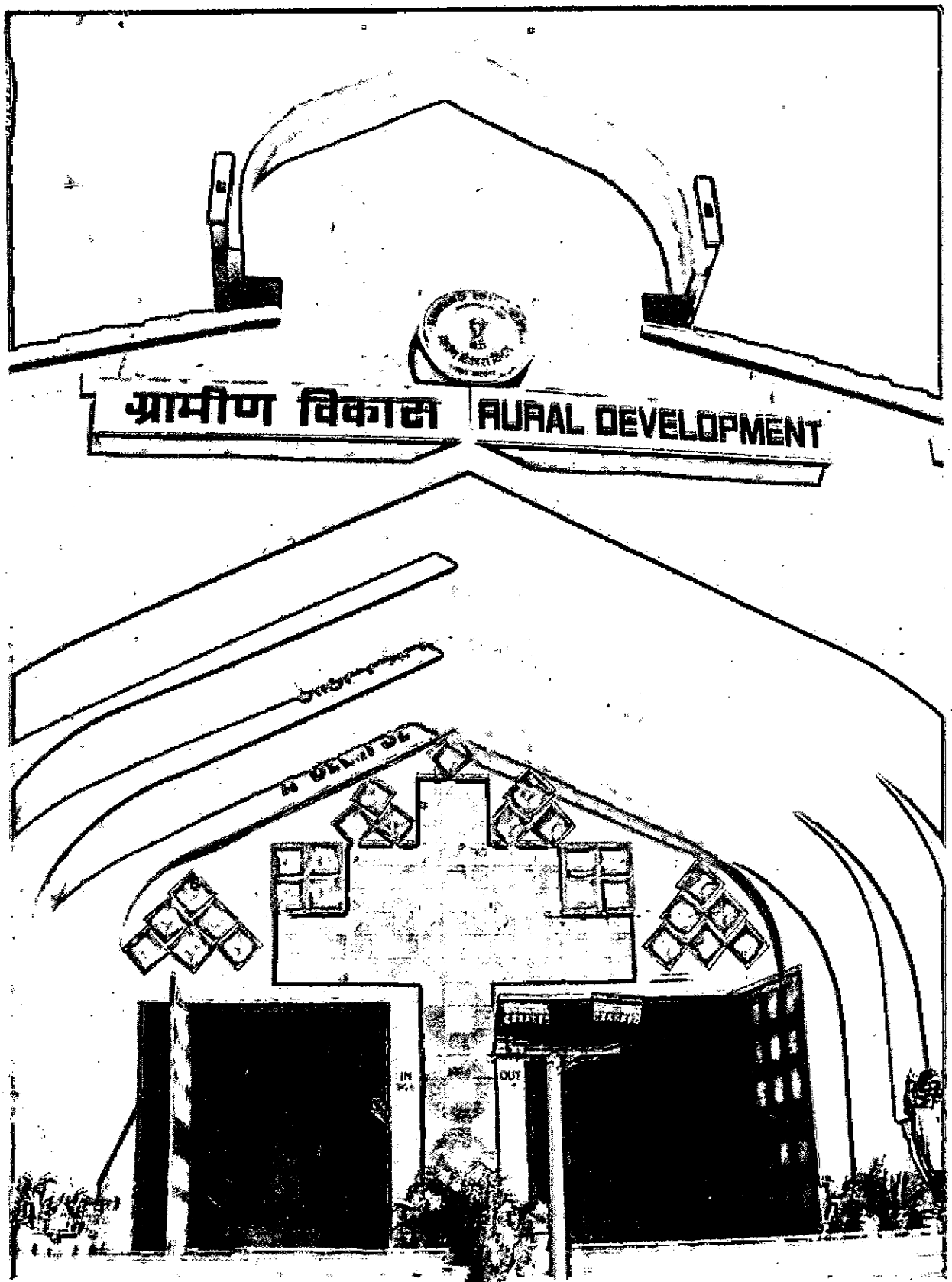

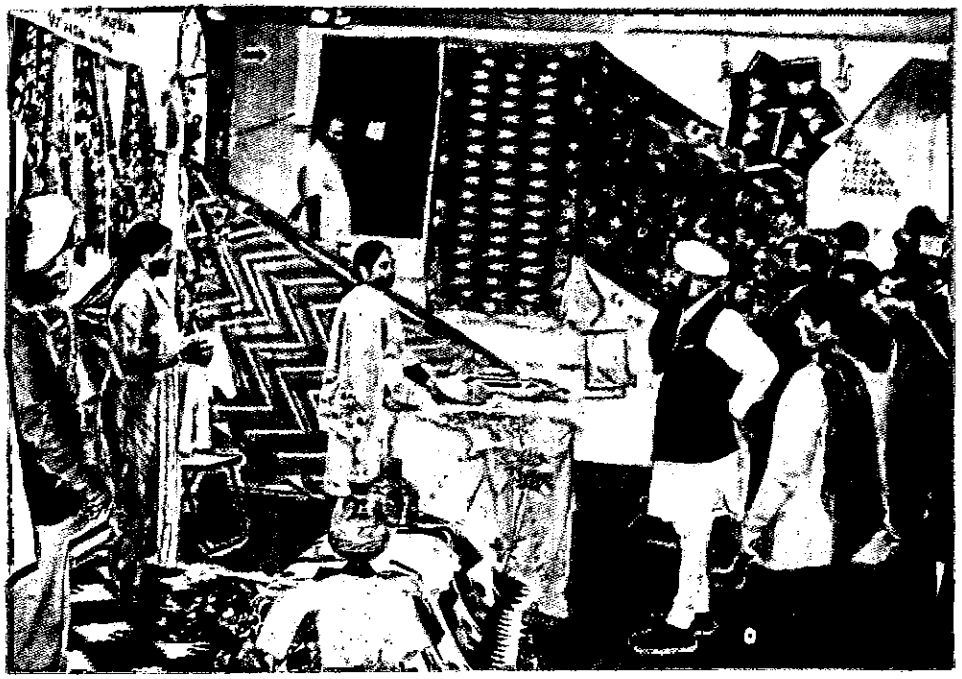

कृषि मंत्री, श्री गुरदयाल सिंह ढिल्लों, मंडप में पंजाब के स्टाल आई.आर.डी.पी. के लाभग्राहियों द्वारा तैयार की गयी चीजों को देखते हुए।

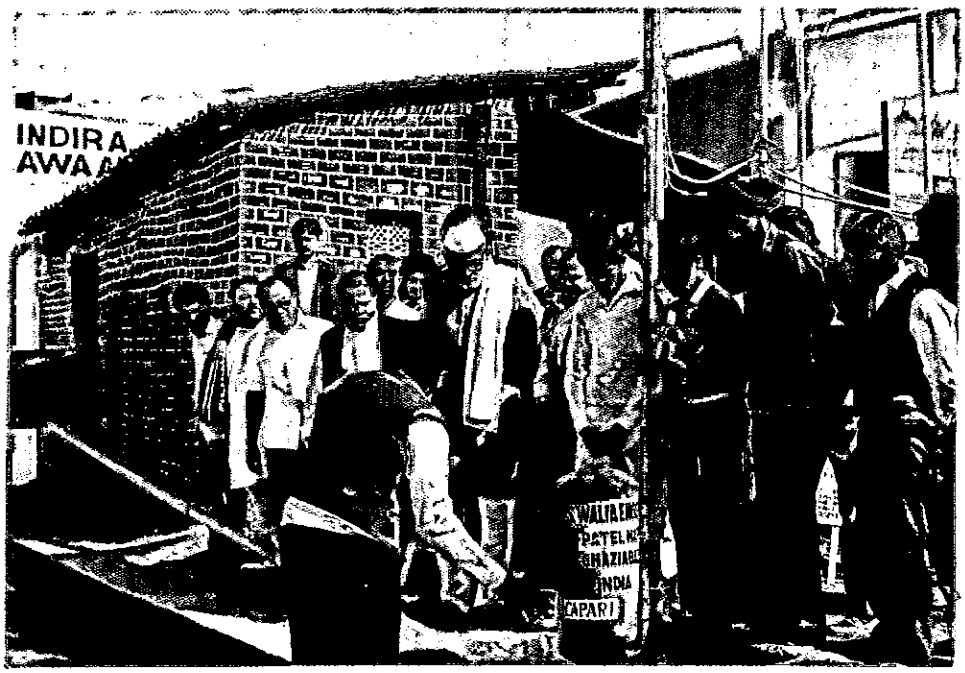

ग्रामीण विकास राज्य मंत्री, श्री रामानन्द यादव, मंडप में "कपार्ट" द्वारा प्रदर्शित पानी संयंत्र को देखते हुए। पृष्ठ भूमि में "इंदिरा आवास योजना" के घर।

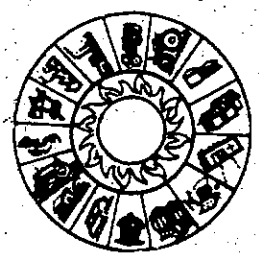

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण विकास विभाग का प्रमुख मासिक

वर्ष 33 माघ-फाल्गुन शक 1909 अंक-4

'कुरुक्षेत्र' के लिए मौलिक लेख, कहानी, एकांकी, कविता, संस्मरण, हास्य-व्यंग्य चित्र आदि भेजिए।

●

अस्वीकृत रचनाओं की वापसी के लिए टिकट लगा व पता लिखा लिफाफा साथ आना आवश्यक है।

●

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने, पता बदलने या अंक न मिलने की शिकायत, व्यापार व्यवस्थापक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001 से कीजिये।

सम्पादकीय पत्र-व्यवहार : सम्पादक, कुरुक्षेत्र (हिन्दी), कृषि मंत्रालय, ग्रामीण विकास विभाग, 467, कृषि भवन, नई दिल्ली के पते पर करें।

दूरभाष : 384888

एक प्रति : 2.00 रु

वार्षिक चन्दा : 20 रु.

सहायक सम्पादक : गुरचरण लाल लूथरा
उप सम्पादक : राकेश शर्मा

सहायक निदेशक : राम स्वरूप मुंजाल (उत्पादन)

आवरण पृष्ठ : राजेन्द्र कुमार टंडन

चित्र : फोटो प्रभाग एवं ग्रामीण विकास विभाग से साभार

प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी यही हों।

इस अंक में

	पृष्ठ संख्या
ऊर्जा की समस्या एवं उपभोग:एक अवलोकन बी. के.श्रीवास्तव	2
ग्रामीण उत्थान में कृषि-आधारित उद्योगों का योगदान निर्मल गांगुली	5
शिक्षा और ग्रामीण विकास डा. एम. एल. विश्वकर्मा	8
उत्तर प्रदेश के ग्रामीण विकास में विद्युतीकरण की भूमिका डा. साहब दीन मौर्य एवं श्रीमती गायत्री देवी	11
ग्रामीण विकास में लोगों की भागीदारी ईश्वर लाल पं. वैश्य	14
संत कबीर के नाम को सार्थक करती कबीर बस्ती नारायणसिंह राठौड़	17
कृषि में यंत्रीकरण से लाभ अजय कुमार श्रीवास्तव	19
दुखों का पहाड़ और सुखों की सरिता प्रेम चन्द्र सैनी	21
मछली पालन और हमारे भूमिहीन कृषक डा. निर्मलकान्त ठाकुर	25
साम्प्रदायिक सद्भाव और जनसंचार माध्यम वी. श्रीपति राव	28
आदिवासी महिलाएं शशि प्रभा	31
आशा दीप (कविता) यदुनन्दन प्रसाद शर्मा "यदुवर"	33
ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक कमलेश गुप्ता	36
ग्रामीण उद्योगों में संगठन की आवश्यकता कमल टावरी	39

ऊर्जा की समस्या एवं

उपभोग:

एक अवलोकन

बी.के. श्रीवास्तव

ऊर्जा का उपयोग आज प्राय: सभी क्षेत्रों में होता है। यह हमारे जीवन का एक आवश्यक अंग बन गयी है। एक तरफ गांवों में विशेषकर मिट्टी का तेल, लकड़ी, कृषि अवशेष इत्यादि के रूप में इसका उपयोग होता है तो दूसरी तरफ, शहरों में बिजली, कुकिंग गैस, कोयला, डीजल, पैट्रोल इत्यादि के रूप में। अब तो गांवों में भी बिजली तेजी से पहुंचायी जा रही है। ग्राम विद्युतीकरण का कार्यक्रम भी सरकार द्वारा इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु तेजी से चलाया जा रहा है। इन ऊर्जा स्रोतों का भंडार सीमित है, परन्तु इनकी पूर्ति में ह्रास के साथ-साथ मांग में दिनोंदिन वृद्धि होती जा रही है। इसीलिए मिट्टी का तेल, डीजल तथा पैट्रोल जैसे कृत्रिम ऊर्जा के साधनों की कीमतों में तेजी से वृद्धि होती जा रही है। ओपेक देशों द्वारा कीमतों में निरन्तर वृद्धि किये जाने से अर्धविकसित राष्ट्रों की भुगतान सन्तुलन की स्थिति तथा आर्थिक विकास, दोनों ही प्रभावित हुए हैं। इनके समाधान के लिये शोध भी हो रहे हैं। विकल्प के रूप में सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, पनचक्की, बॉयो गैस, बॉयो मास, निर्धूम चूल्हों को उपयोग में लाया जा रहा है। कृत्रिम साधनों के भंडार सीमित हैं, परन्तु प्राकृतिक ऊर्जा साधनों (जैसे सौर ऊर्जा) के भंडार असीमित। अत: विकल्प के रूप में प्राकृतिक ऊर्जा साधन उपलब्ध हैं।

ऊर्जा सम्बन्धी समस्यायें, विभिन्न क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न होती हैं। शहरों तथा गांवों के मध्य, इन समस्याओं में विभिन्नता है। इसी प्रकार पर्वतीय क्षेत्रों की ऊर्जा उपभोग की समस्यायें, अन्य क्षेत्रों की ऊर्जा सम्बन्धी समस्याओं से भिन्न हैं। यहां तक कि एक ही जिले के दो क्षेत्रों में भी ऊर्जा सम्बन्धी समस्यायें अलग हैं, जैसे कि देहरादून तथा नैनीताल जिलों के पर्वतीय तथा समतल क्षेत्र। इस लेख द्वारा उत्तर प्रदेश के सभी आठ पर्वतीय जिलों की ग्रामीण क्षेत्रों की सम्मिलित रूप से ऊर्जा सम्बन्धी समस्याओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। ये आठ जिले हैं-अल्मोड़ा, पिथौरागढ़, नैनीताल, चमोली, उत्तरकाशी, टिहरी गढ़वाल, पौड़ी गढ़वाल तथा देहरादून। नैनीताल तथा देहरादून जिलों के समतल क्षेत्रों को सम्मिलित नहीं किया गया है। इस लेख में मुख्यत: ऊर्जा सम्बन्धी विचारों की, पारिवारिक स्तर पर तथा कृषि व यातायात के सन्दर्भ में व्याख्या की गयी है।

पारिवारिक स्तर पर ऊर्जा का उपयोग

पारिवारिक स्तर पर ऊर्जा का उपभोग विशेषत:

खाना बनाने में, जगह गर्म रखने में तथा प्रकाश करने में होता है। खाना बनाने तथा जगह गर्म रखने में लकड़ी का उपयोग विशेषकर होता है। प्रकाश करने के लिये, मिट्टी का तेल, छिलुका तथा बिजली, ऊर्जा के मुख्य स्रोत हैं। उत्तराखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में लकड़ी, मिट्टी का तेल, छिलुका, कृषि अवशेष तथा बिजली, ऊर्जा के मुख्य स्रोत हैं। अधिकतर गांव, जो कस्बे तथा सड़क से दूर स्थित हैं, उनमें बिजली नहीं है तथा मिट्टी का तेल दुर्लभ है। यदि उपलब्ध होता है तो ग्रामीणों को निर्धारित कीमत से अधिक मूल्य देकर खरीदना पड़ता है। अतः वहां के निवासियों को लकड़ी पर ही निर्भर रहना पड़ता है। वैसे तो लकड़ी का उपभोग पूरे पर्वतीय क्षेत्र में अधिकतम है, परन्तु उन गांवों में विशेषकर है जो काफी ऊँचाई पर स्थित हैं तथा वनों के समीप हैं। अध्ययन से पता लगता है कि उत्तराखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में, पारिवारिक स्तर पर, कुल ऊर्जा के उपभोग में, लकड़ी का उपयोग लगभग 98 प्रतिशत है जबकि मिट्टी के तेल का उपभोग मात्र 0.16 प्रतिशत है। लगभग 96 प्रतिशत परिवार लकड़ी को एकत्र करते हैं। सामान्यतः परिवार के सभी सदस्य पुरुष, स्त्री व बच्चे इस कार्य को करते हैं, परन्तु लकड़ी एकत्र करने में, कुल जितना श्रम लगता है, उसमें लगभग आधा श्रम स्त्रियों का होता है। लकड़ी एकत्र करने का कार्य अधिकतर या तो हर माह होता है या वर्ष के कुछ विशिष्ट समय (सामान्यतः नवम्बर से फरवरी के मध्य) में, जब कृषि का कार्य कम होता है।

सर्वेक्षण के दौरान एक तथ्य यह सामने आया कि गरमी तथा जाड़ों के बीच में, लकड़ी के उपभोग में काफी मात्रा में अन्तर है। सामान्यतः वे गांव जो कि काफी ऊँचाई पर स्थित हैं, वहां गर्मियों की अपेक्षा, सर्दियों में लकड़ी का उपभोग दोगुना है। परन्तु ऐसा आवश्यक नहीं है, क्योंकि वे गांव, जो बहुत नीचे स्थित हैं, उनमें गर्मियों की अपेक्षा सर्दियों में लकड़ी का उपभोग, अधिक ऊँचाई पर स्थित गांवों में लकड़ी के उपभोग की तुलना में अधिक है। इसका मुख्य कारण इन गांवों का वनों के करीब होना है। इसलिए लकड़ी आसानी से उपलब्ध हो जाती है। लोग अधिकतर लकड़ी आरक्षित वनों से एकत्र करते हैं। सिविल एवं सोयम तथा अन्य वन भी लकड़ी एकत्र करने के प्रमुख स्रोत हैं, परन्तु आरक्षित वनों से सबसे अधिक लकड़ी एकत्र की जाती है। कुल एकत्र की गयी लकड़ी में से लगभग 51 प्रतिशत लकड़ी आरक्षित वनों के द्वारा ही प्राप्त की जाती है। सामान्यतया लोग गिरी हुई लकड़ियों को ही एकत्र करते हैं अथवा पेड़ की छोटी-छोटी टहनियों को काटते हैं। इस काम के लिये उन्हें लगभग 10 से 15 किलोमीटर तक पैदल चलना पड़ता है तथा लकड़ियों को गट्ठर के रूप में, जिनका वजन 25 से 40 किलोग्राम तक होता है, अपनी पीठ पर लादकर लाना पड़ता है।

कृषि में ऊर्जा उपयोग

पर्वतीय क्षेत्र में ग्रामीण परिवारों का मुख्य व्यवसाय कृषि है। नौकरी, श्रम तथा अन्य आर्थिक कार्य, आय बढ़ाने के अन्य साधन हैं। लघु तथा सीमान्त भूमि जोतों की बहुलता है। अधिकतर कृषि योग्य भूमि असिंचित तथा 2 एकड़ के अन्दर ही है। इसलिये कृषक उन्नत बीजों तथा खादों का उपयोग नहीं करते। कृषि उत्पादन मुख्यतः घरेलू उपभोग के लिये होता है। खाद्यान्नों की बिक्री भी न्यून है। अधिक उत्पादन के लिये सिंचाई की परम आवश्यकता होती है। पर्वतीय क्षेत्रों में सिंचाई केवल वर्षा अथवा प्राकृतिक झरनों द्वारा ही होती है। अतः सिंचाई के सीमित साधन होने से कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता दोनों ही कम हैं। कुछ जगहों पर आलू ही केवल व्यवसायिक फल है। पहाड़ों पर पशु पालन तथा फलों के उत्पादन के अच्छे अवसर हैं। यद्यपि परिवारों का प्राथमिक व्यवसाय कृषि है, परन्तु इससे न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं हो पाती। इसलिये वहां के लोगों को अन्य व्यवसायों पर भी निर्भर रहना पड़ता है।

कृषि में मानवों तथा पशु, दोनों शक्तियों का ही उपयोग होता है। हल चलाने का काम पहाड़ी ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुष ही करते हैं। स्त्रियों तथा बच्चों का भी कृषि कार्य में विशेष योगदान होता है। जुताई का काम जानवरों (उदाहरणार्थ बैलों) द्वारा किया जाता है। मानव तथा जानवर, दोनों की शक्तियों का उपयोग थ्रेशिंग में होता है। यहां कृषि में व्यवसायिक ऊर्जा स्रोतों जैसे डीजल पम्प, ट्रैक्टर इत्यादि का उपयोग नहीं होता है। इसका कारण है कि यहाँ की कृषि योग्य भूमि बहुत ही छोटे-छोटे आकारों (नालियों) में होती है तथा एक ही स्थान पर नहीं होती है। अतः व्यवसायिक ऊर्जा स्रोतों का उपयोग पर्वतीय क्षेत्रों में सम्भव नहीं है।

यातायात

पर्वतीय क्षेत्र में यातायात के प्रमुख साधन बस तथा

ट्रक हैं। यहां के निवासी अधिकतर इन्हीं साधनों का उपयोग करते हैं। इस सुविधा का लाभ अधिकतर वही लोग उठा पाते हैं, जो सड़क के किनारे स्थित गांवों में निवास करते हैं। इन निवासियों को विकास के अवसर भी अधिक प्राप्त हैं। इनकी आर्थिक स्थिति भी उन लोगों से कुछ अच्छी है, जो सड़क से दूर स्थित गांवों में रहते हैं। बसों की संख्या भी पर्याप्त नहीं है तथा सभी रास्तों पर चलती नहीं हैं। इनके चलने का समय भी निर्धारित नहीं हैं। इससे लोग अधिक लाभ नहीं उठा पाते हैं, विशेषकर वे, जो बहुत दूर अन्दर स्थित गांवों में रहते हैं। इसलिये लोग अपनी यात्रा बस से अधिक ट्रकों में करना ज्यादा पसन्द करते हैं अथवा पैदल तय करते हैं।

भारी बोझ ले जाने के लिये लोग बसों व ट्रकों का उपयोग करते हैं। इसके लिये खच्चरों का भी बहुत उपयोग होता है। हल्के बोझ, लोग अपनी पीठ पर लादकर ले जाते हैं। बहुत से लोग जो सड़क से दूर स्थित गांवों में रहते हैं, उनके पास पैदल चलने के अतिरिक्त कोई अन्य साधन उपलब्ध नहीं होता। ऐसे लोगों की आने जाने की इच्छाशक्ति कमजोर हो जाती है तथा आवश्यक कार्य के लिए आने जाने के अतिरिक्त अन्य लोगों से सम्पर्क टूटने सा लगता है।

ऊर्जा समस्याओं के बारे में स्थानीय लोगों के विचार

पिछले दस वर्षों के मध्य लकड़ी की उपलब्धता में कमी आयी है और फिलहाल निकट भविष्य में, स्थिति में सुधार की कोई आशा नहीं है, ऐसे पर्वतीय ग्रामीण निवासियों के विचार रहे हैं। वैसे तो ऊर्जा के सभी स्रोतों का उपभोग बढ़ा है, परन्तु लकड़ी के उपभोग में विशेष वृद्धि रही है। मिट्टी का तेल तथा बिजली की आपूर्ति वर्तमान में, सन्तोषप्रद तो नहीं है, परन्तु पिछले वर्षों की तुलना में, स्थिति पहले से सुदृढ़ अवश्य हुई है। जैसे-जैसे लकड़ी की उपलब्धता में कठिनाइयां बढ़ती जा रही हैं, लोग छिलुका तथा कृषि अवशेष जैसे ऊर्जा स्रोतों का उपयोग करते जा रहे हैं। उनके अनुसार, स्थिति में आयी गिरावट के प्रमुख कारण जनसंख्या वृद्धि तथा वनों के कटान रहे हैं। इधर कुछ वर्षों से वनों से दूरी बढ़ती जा रही है तथा लकड़ी एकत्र करने में लगने वाला समय भी तेजी से बढ़ता जा रहा है।

निष्कर्ष

ऊर्जा के स्रोतों (विशेषकर लकड़ी) का उपभोग, जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ बढ़ता जा रहा है। इसलिये वनों की स्थिति में भी ह्रास हो रहा है। इसका एक कारण यह भी है कि भविष्य में लकड़ी की उपलब्धता की कठिनाइयों को लेकर लोगों में असुरक्षा की भावना व्याप्त है। लोग अधिक से अधिक मात्रा में लकड़ी काटकर संग्रह करना चाहते हैं। अतः वनों के कटान को रोकना नितान्त आवश्यक हो गया है। व्यावसायिक कटान से वन अधिक प्रभावित हो रहे हैं। अतः इस पर शीघ्र ही अंकुश लगाना अनिवार्य है। ऊसर तथा कृषि अयोग्य भूमि पर भारी मात्रा में वृक्षारोपण का कार्यक्रम लागू करना चाहिए। इसके लिए उन प्रजातियों का चयन करना चाहिये, जो कम समय में जल्द तैयार हो जायें। वृक्षारोपण कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए स्थानीय लोगों का सहयोग प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। परन्तु वास्तव में, जनता का सहयोग प्राप्त करना, कोई आसान नहीं है। इसके लिये आवश्यक है कि उन्हें इस बात का पूर्ण आश्वासन दिया जाये कि उनके हितों को, अन्य उद्देश्यों पर प्राथमिकता दी जाएगी। जैसा कि अध्ययन से विदित है कि ऊर्जा के अन्य मुख्य स्रोतों जैसे मिट्टी का तेल तथा बिजली की पूर्ति अनियमित है। अतः लकड़ी के उपभोग को कम करने तथा वनों को और अधिक नष्ट होने से बचाने के लिए अन्य वैकल्पिक ऊर्जा स्रोतों जैसे बॉयो गैस तथा बॉयो मास को बढ़ावा देना होगा। ग्रामीणों में इसे अधिक से अधिक उपयोग में लाने की भावना को प्रचार के माध्यम से जागृत करना चाहिये। इसके लिए सरकार एक सुनियोजित कार्यक्रम लागू करे, जिसमें प्लान्ट को लगाने में कुछ धन स्वयं उपभोग निवेश करे तथा शेष छूट के रूप में स्वयं सरकार लगाये। इससे लोगों की प्लान्ट को सुचारू रूप से चलाने में पूर्ण रुचि रहेगी। अतः आशा है कि भविष्य में वनों की स्थिति में सुधार होगा तथा परिवारों की ऊर्जा समस्याओं में कमी आयेगी।

गिरि विकास अध्ययन संस्थान
सेक्टर 'ओ' अलीगंज हाउसिंग स्कीम
लखनऊ (उ.प्र.) 226 020

ग्रामीण उत्थान में कृषि-आधारित उद्योगों का योगदान

निर्मल गांगुली

भारत जैसे विकासशील देश में कृषि आधारित उद्योगों का विशेष स्थान है क्योंकि आज भी हमारी राष्ट्रीय आय में कृषि का हिस्सा 35 प्रतिशत है और करीब दो तिहाई श्रमजीवी लोग खेती बाड़ी पर निर्भर हैं। इसके साथ-साथ हमें यह भी नहीं भूलना चाहिए कि देश की 75 प्रतिशत से अधिक जनसंख्या गांवों में रहती है। कृषि-आधारित उद्योग का हमारे गांवों में बहुत महत्व है क्योंकि ये कृषि क्षेत्र और औद्योगिक क्षेत्र के बीच मजबूत कड़ी का काम करते हैं। ये उद्योग ग्रामीण लोगों के रहन-सहन का स्तर ऊंचा उठाने में काफी सहायक हो सकते हैं। यदि ग्रामीण क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर कृषि आधारित उद्योग स्थापित किए जाएं तो जल्दी ही गांवों में ऐसा वातावरण पनपने लगेगा, जिससे अपेक्षित सामाजिक परिवर्तन लाया जा सकेगा। इन उद्योगों में स्थानीय साधनों और स्थानीय लोगों की प्रतिभा का समुचित उपयोग किया जा सकता है।

देश के अनेक हिस्सों में इस वर्ष व्यापक सूखा पड़ने के कारण कृषि-आधारित उद्योगों का महत्व और बढ़ गया है। कुटीर उद्योगों तथा कृषि पर आधारित अन्य उद्योगों से ग्रामीण लोगों की आय में वृद्धि होती है। यदि ग्रामीण इलाकों में कुटीर तथा कृषि आधारित उद्योगों की स्थापना हो जाए तो सूखा बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं का असर बहुत ज्यादा नहीं होगा, क्योंकि तब लोगों के पास आय के वैकल्पिक साधन भी उपलब्ध रहेंगे। कृषि आधारित उद्योगों की बुनियाद पर ही ग्रामीण औद्योगीकरण को विकसित किया जा सकता है।

उद्योग और कृषि में सम्बंध स्थापित करने के सिद्धांत को विकासशील देश अपने आर्थिक विकास के लिए उत्तरोत्तर अपना रहे हैं। कृषि तथा उद्योगों के संतुलित विकास और इनमें परस्पर संबंध को लगातार सुदृढ़ बनाने से औद्योगीकरण के सामाजिक व आर्थिक लक्ष्य पूरे करने में सहायता मिलती है।

कृषि उत्पादन में वृद्धि से औद्योगीकरण की गति में तेजी आती है। अधिकतर विकासशील देशों में कृषि उत्पादन में वृद्धि सफल औद्योगीकरण के लिए पहली शर्त है। कृषि उत्पादों को कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल करने वाले उद्योगों का विकास उसी दर से होगा, जिस दर से इन वस्तुओं का उत्पादन बढ़ता है। अधिकतर विकासशील देशों में औद्योगिक प्रगति खाद्य वस्तुओं की सप्लाई में वृद्धि पर निर्भर रहती है। इसका कारण यह है कि विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में औद्योगीकरण के कारण आय में वृद्धि के फलस्वरूप खपत की मांग अपेक्षाकृत अधिक होती है। कम आय वाले परिवारों में सबसे अधिक धन खाद्य पदार्थों पर खर्च होता है। इसलिए गैर कृषि क्षेत्रों के विकास के फलस्वरूप खपत की मांग में वृद्धि से खाद्य पदार्थों की मांग लगती है।

कृषि और उद्योगों के बीच संबंध सुदृढ़ करने में कृषि आधारित उद्योगों की प्रमुख भूमिका है। चावल मिलें, आटा चक्कियां, कपड़ा, चीनी, काफी, कागज, रबड़, सिगरेट आदि उद्योग कृषि-आधारित उद्योग कहलाते हैं, जिनमें बड़ी मात्रा में कृषि उत्पाद कच्चे माल के रूप में इस्तेमाल होते हैं। विकासशील देशों में औद्योगीकरण में तेजी लाने के लिए कृषि आधारित उद्योगों की स्थापना को विकास नीति का अभिन्न अंग माना जाना चाहिए, क्योंकि इनके आधार पर अन्य उद्योगों का विकास किया जा सकता है।

कृषि पद्धति को आधुनिक बनाने के लिए नई टेक्नोलोजी के इस्तेमाल, उर्वरक तथा कीटनाशक दवाओं के प्रयोग और कुशल प्रबंध के जरिये कृषि उत्पादन में वृद्धि करने की काफी संभावनाएं हैं। इस प्रकार कृषि में उत्पादकता बढ़ाने के लिए औद्योगिक समर्थन मिलना अनिवार्य है। इससे कम उत्पादक क्षमता वाले कृषि मजदूरों की कार्य कुशलता में परिवर्तन आएगा और खेती के लिए कम मजदूरों की जरूरत पड़ेगी तथा अतिरिक्त श्रमिकों को उद्योगों में रोजगार मिलने लगेगा।

कृषि आधारित उद्योगों का विकास करने का एक महत्वपूर्ण लाभ यह होता है कि इससे योजना प्रक्रिया का विकेन्द्रीकरण होता है और स्थानीय साधनों और स्थानीय लोगों की आवश्यकता को ध्यान में रखकर योजनाएं बनाई जाती हैं। इस प्रकार इससे स्थानीय उद्यमियों को प्रेरणा मिलती है, रोजगार के अवसर बढ़ते हैं, गांवों से शहरों में पलायन पर नियंत्रण लगता है तथा उत्पादन का आधार विस्तृत होने से आर्थिक सत्ता के कुछ हाथों में सीमित होने पर रोक लगती है।

भारत में सकल घरेलू उत्पाद में काफी योगदान होने के कारण कृषि का विशेष महत्व है। 1985-86 में सकल घरेलू उत्पाद में कृषि का योगदान 1970-71 के मूल्यों के आधार पर 35.6 प्रतिशत था। देश की कुल श्रमजीवी लोगों में से 65.5 प्रतिशत को कृषि में रोजगार मिला हुआ है। देश की 76.7 प्रतिशत जनता गांवों में रहती है। कृषि उत्पादन में वृद्धि से देश की जनता के लिए अनाज तो उपलब्ध होता ही है, इससे औद्योगिक उत्पादों की मांग भी बढ़ती है।

जुलाई 1980 के औद्योगिक नीति वक्तव्य में भी भारत में कृषि-आधारित उद्योगों के महत्व का उल्लेख किया गया है। इस नीति वक्तव्य का एक उद्देश्य कृषि आधारित उद्योगों के विकास को प्राथमिकता देकर उद्योगों के लिए कृषि के आधार को और मजबूत बनाना है।' 10 दिसम्बर को राज्यों के उद्योग मंत्रियों के सम्मेलन में प्रधान मंत्री श्री राजीव गांधी ने अपने भाषण में इसी बात पर जोर देते हुए कहा- "एक क्षेत्र जहां अभी उद्योग ने अपने पांव नहीं जमाए, वह है खाद्य संसाधित करने का उद्योग। कृषि भी हमारी अर्थव्यवस्था की मुख्य धारा है इसलिए यह सही है कि दूसरा स्थान खाद्य संसाधन को दिया जाना चाहिए नहीं तो किसान निराश हो जाएंगे। अचानक उन्हें लगेगा कि उनकी आर्थिक प्रगति में हो रही वृद्धि रूक गई है और उन्हें अपने उत्पादों का सदुपयोग करने का अवसर नहीं मिल रहा। विशेष कर उन क्षेत्रों में जिनमें उत्पादन काफी बड़ा है और जिनमें खाद्य संसाधित करने के उद्योग के लिए पर्याप्त माल है, किसान अधिक हतोत्साहित होंगे।"

समग्र औद्योगिक प्रगति में कृषि आधारित उद्योगों का कितना अधिक योग है, यह इसी तथ्य से स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक उत्पादन में इनका हिस्सा 32.99 प्रतिशत है। 1974-75 से 1985-86 तक प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह बात भी उजागर होती है कि कृषि आधारित उद्योग बुनियादी तौर पर तिलहन, कपास, पटसन, रबड़, मसालों चाय, काफी, फल, सब्जी, गन्ना, तम्बाकू आदि गैर-खाद्य वस्तुओं के उत्पादन से प्रभावित होते हैं। इन आंकड़ों के आधार पर किए गए विश्लेषण से पता चलता है कि कृषि-आधारित उद्योगों में 6.8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर प्राप्त करने के लिए गैर-खाद्य वस्तुओं के उत्पादन में 13.9 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर बनानी होगी। इसी तरह कृषि आधारित उद्योगों तथा समुचे उद्योगों का उत्पादन भी एक दूसरे से जुड़ा हुआ है। उदाहरण के लिए यदि औद्योगिक उत्पादन में वृद्धि दर 8 प्रतिशत वार्षिक निर्धारित की जाती है तो उसे पाने के लिए कृषि आधारित उद्योगों में 6.8 प्रतिशत वार्षिक दर से उत्पादन बढ़ाना होगा। इन सबसे सिद्ध होता है कि औद्योगिक उत्पादन, कृषि-आधारित उद्योगों के उत्पादन तथा गैर-खाद्य कृषि जिंसों के उत्पादन के बीच गहरा संबंध है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सातवीं योजना में 8 प्रतिशत वार्षिक वृद्धि दर का लक्ष्य पूरा करने के लिए देश में कृषि आधारित उद्योगों की वृद्धि दर 6.8 प्रतिशत वार्षिक बनाए रखनी होगी, जिसके लिए गैर-खाद्य कृषि वस्तुओं के उत्पादन को वार्षिक वृद्धि दर 13.9 प्रतिशत प्राप्त करनी होगी।

भारत में कृषि आधारित उद्योगों के विकास के लिए कुछ अनुकूल परिस्थितियां भी हैं, जो इस प्रकार हैं:

1. ये उद्योग आसानी से लगाए जा सकते हैं और ग्रामीण इलाकों में लोग इनमें कम पूंजी लगाकर आय बढ़ा सकते हैं। कम लागत आने तथा श्रम आधारित होने के कारण ये ग्रामीण औद्योगीकरण में सहायक हैं।

2. इन उद्योगों में कृषि से मिलने वाले कच्चे माल का सुगमता से कारगर उपयोग हो जाता है। इससे किसानों को उत्पादकता और उपज बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन मिलता है।

3. गांवों में औद्योगिक वातावरण पैदा करके ये उद्योग आधुनिकता की चेतना लाते हैं तथा इस प्रकार ग्रामीण उत्थान को गति मिलती है।

4. कुछ कृषि आधारित उद्योग जैसे डिब्बाबंद खाद्य पदार्थ तथा फल आदि के उद्योग निर्यात बढ़ाने में बहुत योग दे सकते हैं।

5. कृषि आधारित उद्योग सहकारी आधार पर लगाए जा

सकते हैं। जिससे विकास प्रक्रिया में आम लोगों की भागीदारी बढ़ेगी।

6. इन उद्योगों से ग्रामीण क्षेत्रों में विकेन्द्रीकरण को बढ़ावा मिलता है तथा आर्थिक सत्ता केन्द्रित नहीं हो पाती।

ग्रामीण विकास में कृषि आधारित उद्योगों की इस उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए इन उद्योगों के विकास की समुचित नीति बनाई जानी चाहिए। इस नीति में कुछ बातों पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

क) कृषि आधारित उद्योगों के विकास और विस्तार को देश के औद्योगिक तथा आर्थिक विकास की व्यापक नीति का अभिन्न अंग माना जाना चाहिए।

ख) इन उद्योगों से सम्बद्ध अन्य उद्योग भी लगाए जाने चाहिए ताकि इन में तैयार गौण उत्पादों का उपयोग हो सके।

ग) इन उद्योगों में प्रबंध तथा विपणन की नई विधियां अपनाई जानी चाहिए। हमारे देश में जिन कृषि आधारित उद्योग के विकास की काफी संभावनाएं हैं, उनमें प्रमुख हैं:

1. फल संसाधन, जैसे फल रस, जाम, जेली, दूध, मेवे आदि 2. चावल मिल 3. खली से तेल निकालना 4. चीनी 5. सूती वस्त्र 6. कागज 7. ऊनी वस्तुएं 8. कृषि उपकरण 9.नारियल 10. अन्य ग्रामीण उद्योग।

वास्तव में देश के समुचित व संतुलित विकास के लिए कृषि तथा औद्योगिक प्रगति की समन्वित नीति अपनाना आवश्यक है क्योंकि ये दोनों एक दूसरे पर निर्भर हैं और एक क्षेत्र का उत्पादन दूसरे क्षेत्र के उत्पादन से जुड़ा हुआ है। कृषि तथा उद्योगों के इस समन्वित विकास में कृषि आधारित उद्योग प्रमुख भूमिका निभा सकते हैं।

अनुवाद: सुभाष चन्द्र सेतिया

ग्रामीण विकास मण्डप

विजय कुमार कोहली

ग्रामीण विकास विभाग ने आई.आई.टी.एफ. 1987 में एक अनूठे रूप में भाग लिया है। जिन लोगों ने गरीबी की रेखा को पार करके विभिन्न गरीबी-विरोधी उपायों के अन्तर्गत लाभ प्राप्त किया है वे मण्डप में दर्शकों को यह बताने के लिए उपस्थित हुए कि भारतीय ग्रामीण विकास कार्यक्रम द्वारा लोगों के जीवन स्तर में किस प्रकार सुधार हुआ है। मण्डप में उनके कार्यकलापों को भी प्रदर्शित किया गया था। इसमें समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत सूती और ऊनी सिले-सिलाए वस्त्र, हस्तशिल्प की वस्तुएं साबुन और हल्के औजार आदि भी दर्शाये गये थे।

प्रदर्शनी में आंध्र प्रदेश, बिहार, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, केरल, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्य प्रदेश, पंजाब उड़ीसा, तमिलनाडु तथा पाण्डिचेरी के केन्द्र शासित क्षेत्र ने भाग लिया। लाभदायक रोजगार के अवसर उत्पन्न करने और ग्रामीण क्षेत्रों की उपलब्धियों को फोटोग्राफों एवं चार्टों आदि द्वारा प्रदर्शित किया गया था। सूखे के सन्दर्भ में इसका प्रभाव कुछ राज्यों पर पड़ा है, सूखे से प्रभावित क्षेत्रों तथा बंजर भूमि विकास कार्यक्रम को उपयुक्त महत्व दिया गया था।

ग्रामीण विकास विभाग देश के सभी जिलों में कंप्यूटर लगाने की व्यवस्था कर रहा है। एक ऐसा कंप्यूटर प्रदर्शित किया गया था जो सूखे से प्रभावित क्षेत्रों और कृषि भवन के बीच संचार की गति में तीव्रता लाता है। इस के द्वारा शिक्षित युवाओं को रोजगार के अवसर भी मिलेंगे। सूखा पीड़ित क्षेत्रों से नियमित रूप से सूचना मिलते रहने पर वार्षिक कार्यक्रमों को काफी पहले से तैयार किया जायेगा। कापार्ट ने उन ग्रामीण प्रौद्योगिकियों का प्रदर्शन किया जिनसे कृषि उपकरणों, आवास निर्माण, ऊर्जा, पीने का जल और सफाई आदि के क्षेत्रों में किये जा रहे अनवरत परिश्रम को दूर किया जा सकेगा।

ग्रामीण विकास से सम्बन्धित विभिन्न प्रकाशनों की बिक्री राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान हैदराबाद द्वारा की गयी। □

शिक्षा और ग्रामीण विकास

डा. एम.एल. विश्वकर्मा

मानव मस्तिष्क का विकसित होना, जिससे वह बड़े लाभ के लिए छोटे लाभ का त्याग कर सके, मित्रों के कार्यकलाप, उनके प्रयत्न पसंद न आने पर भी शान्त रहकर देख सके, इतनी सहिष्णुता, सहनशीलता, शिक्षा से तो आनी ही चाहिए। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय अपव्यय को रोकना, जरूरतमन्दों की आवश्यकता के समय सहायता करना, रासायनिक खाद एवं वैज्ञानिक कृषि के लाभ समझाना, अंधविश्वासों को हटाना, अच्छे एवं उन्नत बीज प्राप्त करवाना, कृषि उपज तथा उत्पादन बढ़ाने के उपाय बताना, वृद्ध लोगों की सेवा सुश्रुषा करना, राष्ट्रीय एकता को बनाए रखना आदि क्षेत्रों में साथियों की सेवा करने योग्य बनाने की प्रक्रिया को ही शिक्षा कहा जा सकता है।

ग्रामीण विकास और शिक्षा

शिक्षा आर्थिक विकास का अपरिहार्य अंग है। यह आर्थिक विकास के लिए आवश्यक और सहायक साधन है तथा शिक्षा को आर्थिक विकास से उसी तरह अलग नहीं किया जा सकता जिस तरह से दूध को सफेदी से अलग नहीं किया जा सकता। स्पष्ट है कि शिक्षा तथा आर्थिक विकास का घनात्मक सह सम्बन्ध है। प्रधानमंत्री स्वर्गीय श्रीमती इन्दिरा गांधी के शब्दों में, "शिक्षा एवं विकास एक दूसरे से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए हैं।" शिक्षा के फलस्वरूप सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन होते हैं जो आर्थिक विकास के जनक बनते हैं। शिक्षा के माध्यम से ही आधुनिकीकरण के लिए वांछित परिवर्तनों को लाया जा सकता है क्योंकि शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसके माध्यम से किसी भी सन्देश को जन-सामान्य तक पहुंचाया जा सकता है। प्रो. गुन्नार मिर्डल ने शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हुए लिखा है कि, "बहुत बड़ी जनसंख्या को निरक्षर छोड़कर राष्ट्रीय विकास कार्यक्रम शुरू करने की बात मुझे निरर्थक मालूम होती है।" शिक्षा समाज को दिशा देती है और जन जागृति का एक मात्र साधन है। इससे आर्थिक विकास, भौतिक पूंजी निवेश, नये उद्योगों की स्थापना, पुराने उद्योगों का नवीनीकरण करके तब देश उत्पादन वृद्धि होती है। परन्तु ये कार्य तभी किये जा सकते हैं जब इन क्षेत्रों में कार्य करने के लिए पर्याप्त कुशल मानवीय साधन उपलब्ध हों और इन कुशल मानवी साधनों का विकास शिक्षा द्वारा ही किया जा सकता है। ट डब्ल्यू शुल्ज, एडमस्मिथ, साइमन कुजनेट्स, मार्श आर्थर लुईस, वी. के. आर. वी. राव, गालब्रेथ ग्रीड आ अर्थशास्त्रियों के साथ-साथ इतिहासकारों ने भी विकास लिए शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया है।

ग्रीड (1958), रिचिर्ड (1965), इलविन (1962) त टायलर (1969) ने सामाजिक-आर्थिक विकास, पिछ समुदाय के आर्थिक, आधुनिकीकरण, स्वच्छता, दृष्टिको बदलने, पेशे में परिवर्तन के लिए शिक्षा को आवश्य बताया है।

ग्रामीण क्षेत्र की जनता विकासशील देशों के भवि की प्रगति एवं सम्पन्नता हेतु महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर हैं। विकास हेतु शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते ह रावार्ट मैंकलाक ने लिखा है कि "एक अज्ञानी ए अर्धशिक्षित पुरुष जो कि धन उत्पादन हेतु खनिजों ए शक्ति का प्रयोग करता है गरीबी एवं गंवारपन में डूबता है

इस प्रकार शिक्षा न केवल मानवीय गुण है अपि अन्य मानवीय गुणों की उपलब्धि का सक्षम समाधान भी है शिक्षा मनुष्य के सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक ए आर्थिक पहलुओं को जिसकी व्यवहारिकता जीवन के सफ विकास हेतु अपेक्षित है, समान रूप से प्रभावित करके उस नित्य प्रति न्यूनता, सजीवता, पुनर्निमाण तथा यथोचि विकास का सृजन करती है।

साक्षरता के क्षेत्र में प्रगति

स्वतन्त्रता के बाद शिक्षा का सर्वाधिक उल्लेखनी पहलू यह रहा है कि छात्रों, अध्यापकों एवं शिक्षण संस्थाओ की संख्या एवं वित्तीय परिव्यय में बहुत अधिक वृद्धि हुई है

वर्ष 1951-52 से 1982-83 तक के तीन दशकों के आंकड़े उपलब्ध हैं, शिक्षा के हर स्तर पर पर्याप्त वृद्धि हुई है।

शिक्षण संस्थाओं की संख्या 2 लाख 30 हजार से बढ़कर 6 लाख 30 हजार अर्थात लगभग तीन गुनी हो गई है। साथ ही देश में विश्वविद्यालयों की संख्या 16 से बढ़कर 140 से भी अधिक हो गई है।

साक्षरता का प्रतिशत 16.67 से बढ़कर 36.23 हो गया है और प्रौढ़ साक्षरता 19.3% से बढ़कर 40.76% हो गई है। 1961 में पढ़े-लिखे लोगों की संख्या 6 करोड़ थी जो 1983 तक चार गुना बढ़कर 24 करोड़ 80 लाख हो गई। शिक्षा कर कुल खर्च वर्ष 1950-51 में 1 अरब 14 करोड़ 30 लाख रुपये था जो 1983 में 51 अरब 65 करोड़ 90 लाख रुपये और 1986 में 85 अरब 6 करोड़ 62 लाख रुपये तक पहुंच गया जो कि अविभाजित भारत में शिक्षा पर किये गये व्यय की तुलना में 150 गुना अधिक है।

देश में 1981-82 की अवधि में साक्षरता में निरन्तर वृद्धि हुई है। विकास की गति प्रत्येक दशक में अलग-अलग है। जहां 1901 में केवल 5.4 प्रतिशत व्यक्ति साक्षर थे वहीं वर्ष 1981 में 36.2 प्रतिशत व्यक्ति साक्षर हो गये। जैसा कि निम्न तालिका में दर्शाया गया है।

तालिका:-1

भारत में साक्षरता विकास 1901-81

कुल जनसंख्या का प्रतिशत

जनगणना वर्ष	कुल साक्षर	पुरुष	स्त्रियां
1901	5.4	9.8	0.6
1911	5.9	10.1	1.1
1921	7.2	10.6	1.8
1931	9.5	12.2	2.9
1941	16.1	15.6	7.3
1951	16.7	24.9	7.9
1961	24.0	34.4	13.0
1971	29.5	39.5	18.0
1981	36.2	46.7	24.0

स्रोत: रजिस्ट्रार जनरल एवं सेन्सस कमिश्नर 1981, भारतीय जनगणना 1981 अनुमानित जनसंख्या, आंकड़े 1981 का पत्र।

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि वर्ष 1901-1951 की अवधि के मध्य साक्षरता के विकास की गति मन्द थी। 1941-51 के दशक में स्थिरता रही और यह 1941 में 16.1% तथा 1951 में 16.7 प्रतिशत थी। स्वतंत्रता के पश्चात् वाले दशकों में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। 1951 में कुल जनसंख्या 36 करोड़ थी। इसमें शिक्षित 6 करोड़ 12 लाख (16.7%) थे। 1961 में 24.0 प्रतिशत से बढ़कर 1971 में 29.5 प्रतिशत साक्षरता हो गयी। 1981 में पढ़ने वालों की संख्या 23 करोड़ 62 लाख हो गई तथा जनसंख्या बढ़कर 68 करोड़ हो गई। इस प्रकार 17 करोड़ नये पढ़े-लिखे व्यक्तियों की वृद्धि हुई जो 36.2 प्रतिशत है लेकिन अभी भी देश में 24 करोड़ व्यक्ति अनपढ़ हैं।

भारत कृषि प्रधान देश है जो 5.76 लाख गांवों में बसा हुआ है। कुल जनसंख्या का लगभग 80 प्रतिशत लोग ग्रामीण क्षेत्रों में निवास करते हैं। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में नगरीय क्षेत्रों की अपेक्षा साक्षरता का स्तर बहुत नीचा है जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है।

तालिका:-2

भारत: साक्षरता का ग्रामीण-नगरीय अनुपात: 1971-81

क्षेत्र	व्यक्ति		पुरुष		स्त्रियां	
	1971-81		1971-81		1971-81	
सम्पूर्ण क्षेत्र	**29.5**	**36.3**	**39.5**	**46.9**	**18.7**	**24.9**
ग्रामीण	**23.7**	**29.7**	**33.8**	**40.8**	**13.2**	**17.9**
नगरीय	**52.5**	**57.4**	**61.3**	**65.9**	**42.3**	**47.9**

स्रोत:- सेंसस आफ इंडिया, 1981, सीरिज I, पार्ट II स्पेशल पृ. 78

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि साक्षरता के ग्रामीण नगरीय अनुपात में पर्याप्त अन्तर है। वर्ष 1971 की जनगणना के अनुसार कुल 29.5 प्रतिशत व्यक्ति साक्षर थे जिसमें 23.7 प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्रों में तथा 52.5 प्रतिशत नगरीय क्षेत्रों में थे जबकि वर्ष 1981 में यह प्रतिशत क्रमशः

36.3, 29.7 एवं 57.4 प्रतिशत हो गया। वर्ष 1971 में पुरुषों की कुल साक्षरता उक्त की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों की साक्षरता का प्रतिशत कम (33.8 प्रतिशत) था और 1981 में कुल साक्षरता 46.9 की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में पुरुषों की साक्षरता का प्रतिशत 40.8 है। जो कि नगरीय क्षेत्रों की तुलना में (क्रमशः 61.3% एवं 65.9%) का है। साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में स्त्रियों की साक्षरता का अनुपात (13.2 एवं 17.9) नगरीय क्षेत्रों के अनुपात (42.3 एवं 47.9) से कम है अर्थात नगरीय क्षेत्रों में ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में साक्षरता अधिक है। क्योंकि नगरीय क्षेत्रों में विकास सम्बन्धी सुविधाएं अधिक उपलब्ध होती हैं। साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश जनसंख्या कृषि तथा उससे सम्बन्धित कार्यों में लगे रहने से शिक्षा की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। शहरी क्षेत्रों में जहां 57.4% लोग शिक्षित हैं वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में सिर्फ 29.65 प्रतिशत व्यक्ति शिक्षित हैं जबकि देश की 80 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में ही रहती है।

ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा की स्थिति

जहाँ तक ग्रामीण शिक्षा का सम्बन्ध है स्थिति बहुत ही दयनीय है। प्रथम तो अधिकांशतः ग्रामीण बच्चों को प्राइमरी पाठशालाओं में भेजने से वैसे ही कतराते हैं और जो भेजते भी हैं, उन्हें भली-भांति शिक्षा नहीं मिलती।

यह निर्विवाद सत्य है कि मनुष्य के जीवन निर्माण में प्राथमिक शिक्षा आधार शिला का कार्य करती है। उस समय जैसा संस्कार बच्चे के मस्तिष्क पर पड़ेगा उसी के अनुरूप ही वह बनेगा। प्रायः यह देखने को मिलता है कि ग्रामीण प्राथमिक पाठशालाओं का वातावरण बच्चों को देश के सभ्य, शिष्ट, भावी नागरिक बनाने के अनुकूल नहीं होता। अधिकतर ये देखा गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में चोरी-चकारी, गाली-गलौज, मारपीट आदि बुराइयां चरम सीमा पर हैं, वहां इन मासूम बच्चों के मस्तिष्क पर भी इस दूषित एवं कलुषित समाज के वातावरण का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। जब पिता अपने बच्चे को प्राथमिक पाठशाला में भेजता है तो इस आशा एवं विश्वास के साथ कि विद्याध्ययन के साथ-साथ उसके जीवन में सद्भावना, नैतिकता एवं चरित्रता की ओर एक नया मोड़ आयेगा, उसे एक नई रोशनी मिलेगी, पर ऐसा अभी यहां नहीं हो पाया है। यह दोष मुख्यतया अध्यापकों पर आता जो अभी तक गांवों में शिक्षा स्तर को ऊंचा नहीं उठा पाए हैं। सफाई, स्वच्छता की तो बात ही क्या, पाठशालाओं की टूटी-फूटी इमारतों के प्रांगण में कूड़े-कचरे और उस पर भिनभिनाती मक्खियां, मच्छर एवं पढ़ाई के कमरों में भरी बदबू, पेड़ों के नीचे पढ़ाई इत्यादि का बच्चों के दिल दिमाग पर क्या प्रभाव पड़ सकता है? बच्चों के पढ़ने हेतु कुर्सियां या पक्के कमरे-फर्श तो दूर, टाट की पट्टियां एवं कमरों तक की व्यवस्था नहीं होती।

आवश्यकता इस बात कि है हमारी प्राथमिक शिक्षा व्यवस्था में मूलभूत परिवर्तन करके उसे तत्काल लागू किया जाय। ग्रामीण बच्चें देश की सम्पदा हैं, उन्हें शिक्षित सभ्य एवं शिष्ट नागरिक बनाना हमारा पुनीत कर्तव्य है और इसके लिए यह आवश्यक है कि ग्रामीण क्षेत्रों में शिक्षा का नया पाठ्यक्रम शुरू किया जाय। पाठ्यक्रम में नैतिक शिक्षा, कारीगरी, शिल्पकारी शिक्षा को प्राथमिकता दी जाए, जिसका यह अर्थ होगा कि गांवों में उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन एवं ग्रामीण बेरोजगारी की समस्या का समाधान होगा। चूंकि असली भारत गांव में बसता है और गांवों का विकास देश का असली विकास है। इसलिए समय की पुकार है कि हमारे कर्णधार ग्रामीण शिक्षा पर विशेष बल दें और साथ ही शिक्षा का अधिकांश भाग ग्रामीण शिक्षा पर व्यय किया जाय, इससे गांवों में सुशिक्षा का प्रचार एवं प्रसार होगा तो न केवल आर्थिक एवं सामाजिक समस्याएं ही सुलझेंगी, बल्कि हमारे देश में लोकतन्त्र की जड़े भी सुदृढ़ होंगी।

लेक्चरार- अर्थशास्त्र, काशीविद्यापीठ
वाराणसी- 221010

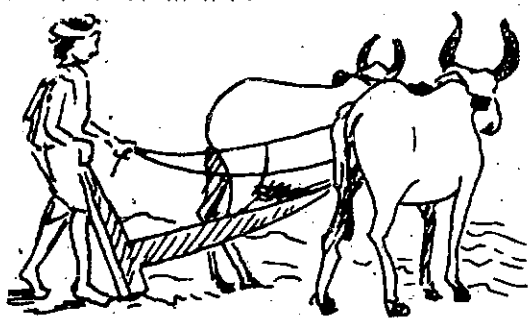

उत्तर प्रदेश के ग्रामीण विकास में विद्युतीकरण की भूमिका

डा. साहब दीन मौर्य
श्रीमती गायत्री देवी

उत्तर प्रदेश भारत का एक विशिष्ट कृषि प्रधान प्रदेश है जहां की लगभग 82 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है। उत्तर प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्र में जनसंख्या का औसत घनत्व 313 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. (1981) है जबकि उर्वरा भूमि वाले पूर्वी जनपदों में यह घनत्व 550 व्यक्ति प्रति वर्ग कि.मी. से भी अधिक है। अतः प्रदेश के सन्तुलित विकास हेतु अधिक जनसंख्या वाले ग्रामीण क्षेत्रों का विकास होना अत्यन्त आवश्यक है। पर्याप्त उर्वरा भूमि वाले इस प्रदेश में कृषि में आधुनिक तकनीकों एवं वैज्ञानिक विधियों के प्रयोग तथा सिंचाई एवं खादों के समुचित प्रबन्ध द्वारा अधिकतम उत्पादन प्राप्त करना वर्तमान समय की सर्वाधिक महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

विद्युत शक्ति एक ऐसा साधन है जिसे दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्रों में भी अन्य साधनों की अपेक्षा सुगमता से पहुंचाया जा सकता है। विद्युत, कोयला या मिट्टी के तेल एवं डीजल की तुलना में सस्ती भी पड़ती है। ग्रामीण क्षेत्रों में विद्युतीकरण से प्रकाश तथा नलकूप एवं पम्पसेटों द्वारा सिंचाई हेतु जल प्राप्त होने के साथ ही साथ अन्यान्य ग्रामीण उद्योगों के संचालन हेतु सस्ती बिजली भी उपलब्ध होती है। वास्तव में विद्युत आर्थिक विकास की आधारशिला बन गयी है। अतः स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात से ही केन्द्र एवं प्रदेश सरकार ग्रामीण विद्युतीकरण की दिशा में निरन्तर प्रयत्नशील है जिसके परिणामस्वरूप पिछले 37 वर्षों के नियोजन काल में उल्लेखनीय सफलता भी प्राप्त हुई है। जहां विद्युत उपलब्ध हो गयी है वहां विविध रूपों में आर्थिक विकास की गति में तीव्रता आयी है और ऐसे विद्युतीकृत गावों का कायाकल्प हो गया है।

विद्युत उत्पादन एवं पारेषण व्यवस्था

उत्तर प्रदेश में प्रथम विद्युत गृह एक प्राइवेट कम्पनी द्वारा सन् 1903 में मसूरी में स्थापित किया गया था। इसके उपरान्त कानपुर (1906), देहरादून (1915), लखनऊ और इलाहाबाद (1916) में शक्तिगृह स्थापित हुए थे, सन् 1928 में गंगा नहर जलविद्युत परियोजना का आरम्भ किया गया जिससे प्रदेश के पश्चिमी जनपदों को विद्युत प्राप्त होने लगी थी। 1937 में फैजाबाद के समीप सोहावल शक्तिगृह तैयार हो गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति तक कुछ अन्य स्थानों पर भी शक्तिगृहों का निर्माण कर लिया गया था। किन्तु संभावित क्षमता अपेक्षाकृत कम थी। प्रथम पंचवर्षीय योजना के आरम्भ (1951) में प्रदेश में विद्युत की कुल संस्थापित क्षमता 174.54 मेगावाट थी।

वर्तमान समय में उत्तर प्रदेश विद्युत परिषद की वाणिज्यिक प्रयोग हेतु डिरेटेड उत्पादन क्षमता 4,294 मेगावाट है जिसमें 2,872 मेगावाट तापीय विद्युत और 1,422 मेगावाट जल विद्युत के अन्तर्गत है। वर्ष 1985-86 में प्रदेश के ताप विद्युत गृहों का प्लांट लोड पैक्टर 34.4 प्रतिशत था जो बढ़कर 1986-87 में 41.2 प्रतिशत तक पहुंच गया। वर्ष 1987-88 के लिए तापीय उत्पादन इकाईयों द्वारा 50 प्रतिशत का औसत प्लांट लोड पैक्टर प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया है।

ताप विद्युत गृहों की कार्य प्रणाली में सुधार करने के उद्देश्य से केन्द्रीय विद्युत प्राधिकरण के सहयोग से एक वृहद नवीनीकरण एंव आधुनिकीकरण योजना आरम्भ की गयी है जिसका क्रियान्वयन ओबरा, हरदुआगंज और पनकी (कानपुर) विद्युत केन्द्रों पर किया जा रहा है। इस योजना से तापीय विद्युत गृहों के प्लांट लोड पैक्टर में उल्लेखनीय वृद्धि हो रही है।

प्रदेश में विद्युत आपूर्ति कई प्रकार की पारेषण (ट्रांसमिशन) लाइनों द्वारा की जाती है। सन् 1960 में उत्पादन गृहों से भारी शक्ति के पारेषण हेतु 220 के.वी. पारेषण लाइनों की शुरूआत की गयी। 1977 में 400 के.वी.

लाइनों का निर्माण किया गया जो देश में सर्वप्रथम सम्भव हुआ था। 1987 में 400 के.वी. पारेषण लाइनों की लम्बाई 5,106 सर्किट कि.मी. और 132 के. वी. लाइनों की लम्बई 9,616 सर्किट कि.मी. है। प्रदेश में अत्यधिक भारी विद्युत उपभोक्ताओं को सीधे 132 के. वी. वोल्टेज तथा 220 के.वी. वोल्टेज द्वारा आपूर्ति की जाती है जबकि अधिकसंख्यक उपभोक्ताओं को 66 के.वी. 33 के. वी. और 11 के.वी. तथा एल.टी. पारेषण लाइनों द्वारा विद्युत आपूर्ति की व्यवस्था की गयी है।

ग्रामीण विद्युतीकरण

वर्ष 1975 के अन्त तक प्रदेश में 31,000 गांवों में विद्युत लाइनें पहुंचायी जा चुकी थीं। विद्युतीकृत गांवों की संख्या द्वितीय पंचवर्षीय योजना के अन्त में लगभग 1,100 ही थी। पांचवी योजना के प्रथम वर्ष 1974-75 तक लगभग 6,400 हरिजन बस्तियों का विद्युतीकरण किया जा चुका था और 233 हजार निजी नलकूपों/पम्प सेटों को विद्युत उपलब्ध करायी जा रही थी।

छठीं पंचवर्षीय योजना के आरम्भ में प्रदेश के कुल 1,12,588 गांवों के 34 प्रतिशत का विद्युतीकरण कर लिया गया था। इसके पश्चात ग्रामीण विद्युतीकरण पर विशेष ध्यान दिया गया और प्रति वर्ष औसतन 4,000 गांवों में विद्युत लाइनें पहुंचा कर विद्युतीकृत गांवों के प्रतिशत को मार्च 1987 तक 64 तक पहुंचा दिया गया है। वर्तमान समय में विद्युतीकृत गांवों की संख्या लगभग 72,000 हो गयी है। उल्लेखनीय है कि यह संख्या किसी भी अन्य प्रदेश के विद्युतीकृत गांवों की अत्यधिक संख्या के कारण विद्युतीकरण का स्तर अखिल भारतीय औसत की तुलना में कम है। हाल के वर्षों में ग्रामीण विद्युतीकरण की गति में अधिक तीव्रता आयी है और वर्ष 1986-87 में 3,710 गांवों के विद्युतीकरण के लक्ष्य के विपरीत 4,003 गांवों को विद्युत उपलब्ध कराने का सराहनीय कार्य किया गया है। वर्ष 1987-88 के लिए 4,080 गांवों के विद्युतीकरण का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। इधर ग्रामीण विद्युतीकरण के अन्तर्गत मुख्यतः हरिजन बस्तियों को विद्युत प्रदान की जा रही है। मार्च 1987 तक 39,226 हरिजन बस्तियों का विद्युतीकरण किया जा चुका था और वर्ष 1987-88 के लिए 3,914 हरिजन बस्तियों के विद्युतीकरण का लक्ष्य रखा गया था।

विद्युतीकरण से ग्रामीण विकास

ग्रामीण औद्योगीकरण में तो विद्युत ने सर्वाधिक योगदान दिया है। इस प्रकार ग्रामीण विद्युतीकरण ने जहां एक ओर ग्रामवासियों को रात के अन्धकार में प्रकाश प्रदान किया है वहीं दूसरी ओर उनकी सिंचन-सुविधा को सुनिश्चित किया है और औद्योगीकरण में तीव्र गतिशीलता प्रदान की है। विद्युतीकरण से होने वाले ग्रामीण विकास के प्रमुख बिन्दु अग्रलिखित हैं:-

(1) सिंचन सुविधा में वृद्धि:- डीजल की तुलना में विद्युत 2 से 4 गुना तक सस्ती पड़ती है अतः जहां विद्युत लाईन पहुंच गयी है, नलकूपों की संख्या तेजी से बढ़ गयी है और अधिकांश नलकूप विद्युत से ही संचालित होते हैं। ऐसे उपजाऊ क्षेत्र में जहां नहरों का पानी उपलब्ध नहीं है और भूमिगत जल का स्तर 150 मीटर से अधिक गहरा नहीं है, विद्युत उपलब्ध होने पर नलकूप ही सिंचाई के लोकप्रिय साधन हैं। अतः प्रदेश में सिंचन सुविधा उपलब्ध कराने में विद्युत का योगदान प्रशंसनीय है।

विद्युतीकृत गांवों में नल कूपों/पम्प सेटों द्वारा सिंचन सुविधा उपलब्ध होने से वर्षा की अनिश्चितता तथा सूखे जैसी स्थिति से निपटने की क्षमता बढ़ गयी है और कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई है। किन्तु जिन गांवों में अभी भी विद्युत लाइनें नहीं पहुंच सकी हें वहां सिंचाई के लिए कृषक अभी भी असहाय अनुभव कर रहे हैं क्योंकि डीजल द्वारा चालित नलकूपों/पम्प सेटों द्वारा सिंचाई महंगी पड़ती है जिसका भार सामान्य एवं निर्धन कृषकों द्वारा वहन कर पाना कठिन होता है। विद्युतीकृत गांवों के चतुर्दिक नलकूपों की शृंखला और हरियाली दिखाई पड़ती है जो विद्युत के अभाव में प्रायः सम्भव नहीं हो पाती।

2. ग्रामीण औद्योगी करण – ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात के साधनों में वृद्धि, बैंकिंग सुविधाओं की उपलब्धता विद्युतीकरण आदि से ग्रामीण केन्द्रों में उद्योग स्थापित किये जा सकते हैं। विशेष रूप से कृषि पदार्थों पर अधारित उद्योगों को धान कूटने, आटा पीसने, तेल पेरने, दाल बनाने आदि के उद्योग ग्रामीण क्षेत्रों में विकसित हो भी रहे हैं। इससे गांव में उपलब्ध कच्चे माल से गांव में ही उपभोग योग्य सामग्री तैयार की जाने लगी है जहां इनकी सर्वाधिक मांग भी है। विद्युत चालित आरा मशीनों के प्रयोग से लकड़ी एवं फर्नीचर उद्योग भी अधिक सफलता के साथ गांवों में विकसित हुए हैं। ग्रामीण विद्युतीकरण से पूर्व

सामान्यतया लकड़ियों को ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों में स्थित आरा (लकड़ी चीरने) की मशीनों तक पहुंचाना पड़ता था।

वर्तमान समय में कागज उद्योग के लिए लकड़ी एवं बांस जैसे परम्परागत कच्चे माल का अभाव होता जा रहा है जिसके स्थानापन्न के रूप में अब धान की पुआल, गेहूं की डण्ठल, फटे-पुराने कपड़े, गन्ने की छोई (खोई) आदि द्वारा लुग्दी बनाने पर विशेष बल दिया जा रहा है। ये समस्त सामग्रियां ग्रामीण क्षेत्रों में पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं अतः छोटे-छोटे कागज तथा लुग्दी उद्योगों का विकास ग्रामीण क्षेत्रों में हो रहा है जो ग्रामीण औद्योगीकरण के उज्ज्वल भविष्य की ओर इंगित करता है। ग्रामीण क्षेत्रों के बाजार केन्द्रों पर आइसक्रीम उद्योग भी विकसित हो रहा है। इसके अतिरिक्त विद्युत द्वारा वेल्डिंग की सुविधा प्राप्त होने से लोहे की ग्रिल बनाने आदि के लघु इंजीनियरिंग उद्योग के विकास की भी अधिक सम्भावनायें विद्यमान हैं।

(3) शीतगृहों द्वारा फल-सब्जी संरक्षणः- ग्रामीण विद्युतीकरण की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि है ग्रामीण क्षेत्रों में शीत गृहों (कोल्ड स्टोरेज) की स्थापना। स्थानीय शीत गृहों के निर्माण से आलू, प्याज आदि सब्जियां वर्ष भर उपलब्ध होने लगी हैं अन्यथा ये गर्मियों में ही सड़कर नष्ट हो जाया करती थीं। शीत गृहों के अभाव में इनका उत्पादन भी अत्यन्त सीमित क्षेत्रफल पर ही किया जाता था। उत्पादन-क्षेत्र के समीप ही आलू रखने की सुविधा हो जाने से प्रदेश के आलू उत्पादक क्षेत्र और उत्पादन में उल्लेखनीय वृद्धि हुई है। आलू का उत्पादन और उपभोग इतना बढ़ता जा रहा है कि अब इसे सब्जी की बजाय खाद्यान्न समझा जाने लगा है क्योंकि भोजन में आलू का उपयोग किसी न किसी रूप में प्रतिदिन हो ही जाता है। अतः आलू की प्रजाति एवं उत्पादन पर विशेष ध्यान दिया जाने लगा है। फलतः किसानों की आय में भी महत्वपूर्ण बढ़ोतरी हुई है। ज्ञातव्य है कि इस कृषिजन्य विकास का श्रेय भी प्रकारान्तर से विद्युतीकरण को ही जाता है।

(4) गुड़-चीनी एवं गन्ना उत्पादन में वृद्धिः- प्रदेश के तराई तथा उससे सम्बद्ध दक्षिणी मैदानी पेटी में जहां गन्ने की खेती के लिए भौगोलिक परिस्थितियां अनुकूल हैं, चीनी कारखानों को स्थापित किया गया है जिसमें विद्युत की उपलब्धि तथा यातायात के साधनों के विकास एवं पूंजी विनियोग की प्रमुख भूमिका रही है। चीनी के कारखाने लग जाने पर गन्ने की मांग काफी बढ़ गयी है और गन्ने का उचित मूल्य भी किसानों को प्राप्त होने लगा है। जिसके परिणामस्वरूप गन्ना उत्तर प्रदेश के उत्तरी मैदानी भाग मुख्यतया तराई क्षेत्र का एक मात्र मुद्रादायिनी फसल बन गया है। इसके अतिरिक्त गांवों में अब गुड़ तथा चीनी बनाने के छोटी-छोटी इकाइयां भी कार्य कर रही हैं जिनमें विद्युत का उपयोग किया जाता है।

(5) प्रकाश मनोरंजन एवं दैनिक सुविधाओं में वृद्धिः- ग्रामीण विद्युतीकरण से अब नगरों की भांति गांवों में भी रोशनी; पंखा आदि दैनिक आवश्यकताओं की पूर्ति होने लगी है। अब गांवों में भी सिनेमा तथा दूरदर्शन जैसी मनोरंजन की सुविधाएं बढ़ रही हैं और दूर-दराज के ग्रामीण क्षेत्र भी मुख्य राष्ट्रीय धारा के साथ होते जा रहे हैं। विद्युत प्रकाश ने रात के घने अंधेरे में प्रायः निष्क्रिय रहने वाली श्रम शक्ति को भी सक्रिय बनाने में उल्लेखनीय योगदान प्रदान किया है।

(6) विद्युत एवं विद्युतीकरण की व्यावहारिक कठिनाइयां:-

उत्तर प्रदेश विद्युत प्रणाली की एक गम्भीर समस्या है पीक पावर कमी। वर्तमान में 15 से 20 प्रतिशत तक विद्युत कमी पायी जाती है। इसके निराकरण हेतु जल विद्युत योजनाओं का विकास परमावश्यक है किन्तु इसके लिए आर्थिक कठिनाई एक प्रमुख समस्या है। केन्द्रीय सरकार के सहयोग से जल विद्युत की नवीन योजनाओं के क्रियान्वयन से विद्युत उत्पादन में वृद्धि करके तापीय विद्युत की बढ़ती कीमतों में स्थायित्व लाया जा सकेगा। विद्युत-आपूर्ति तथा उपभोग में भी अत्यधिक अनियमिता पायी जाती है। जहां विद्युत पहुंच चुकी है वहां विद्युत-आपूर्ति काफी सीमित समय के लिए ही हो पाती है जिसकी अवधि में भी अनियमितता देखने को मिलती है। विद्युत-मूल्य में क्रमिक वृद्धि तथा आपूर्ति में अनियमितता के कारण असंख्य कृषकों के लिए लाभप्रद नहीं रह गयी है जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण यह है कि बहुत से मालिकों ने अपने-अपने नलकूपों से विद्युत-कनेक्सन विच्छेद करा दिया है। इसके विपरीत विद्युत का अवैध उपयोग भी काफी सीमा तक बढ़ गया है जिससे विद्युत विभाग के राजस्व में कमी हो जाती है जिसकी

शेष पृष्ठ 16 पर

ग्रामीण विकास में लोगों की भागीदारी

ईश्वर लाल प. वैश्य

अब तक ग्रामीण विकास के क्षेत्र में भारत को काफी गहरे अनुभव हो चुके हैं। विगत तीन दशकों में ग्रामीण गरीबों के आर्थिक एवं सामाजिक स्तर को ऊंचा उठाने के लिए वह कई कार्यक्रमों को क्रियान्वित कर चुका है। जिनमें कई तो क्षेत्र-विकासलक्षी थे और कई व्यक्ति-विकासलक्षी। उसके इन पिछले अनुभवों में से ही आज के प्रखण्ड-आयोजन और समन्वित ग्रामीण विकास जैसे कार्यक्रम को निम्नतम प्रतिफलित हुए हैं। भारत जैसे विशाल देश में अब तक विकास-कार्यक्रमों को निम्नतम-स्तर पर प्रभावशाली ढंग से हल नहीं किया गया। यह भी अनुभव किया गया है कि ग्रामीण अर्थतन्त्र को विभिन्न दिशाओं से गतिशील करना होगा। गैर-कृषि गतिविधियों पर जोर देना होगा एवं गरीबों की सहायतार्थ प्रायोजित विभिन्न कार्यक्रमों को ठीक तरह से आपस में संकलित करना होगा। सूक्ष्मतम पैनी दृष्टि वाला आयोजन ही समस्याओं की वास्तविकताओं को उनके सही रूप में समझने में सहायक हो सकता है। सम्बन्धित ग्राम विकास कार्यक्रमों की विशेषता यही है कि वे दोनों क्षेत्र-विकास एवं व्यक्ति-विकास पर समान रूप से बल देते हैं।

भागीदारी:- अभी तक हमारे ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की क्रियान्वयन में एक खास त्रुटि यह रही है कि आयोजन के विभिन्न स्तरों पर उसमें लोगों की भागीदारी पर वांछित बल नहीं दिया गया। निम्नतम स्तर पर लोगों की सार्वजनिक भागीदारी से जो आयोजन होना है और ऐसे आयोजन से जो कुछ प्राप्त करने की अपेक्षा होती है, उनके विषय में जनता की आम सहमति का आधार होना चाहिए। वर्तमान में ग्रामीण प्रजा उच्चतर जीवन स्तर की आकांक्षी तो है, लेकिन विकास कार्यक्रमों में उसकी सक्रिय भागीदारी नहीं बनी है।

किसी भी विकास कार्यक्रम को आगे बढ़ाने हेतु सुझाव देने में योजनाओं में अग्रितम तय करने में, स्थानीय स्तर के निर्णय लेने में और विभिन्न स्थानीय समुदायों के सहयोग के स्वरूप को निर्धारित करने आदि में लोगों की सक्रिय भागीदारी बहुत ही महत्वपूर्ण रोल अदा करती है। स्थानीय लोगों की भागीदारी होने से कार्यक्रम स्थानीय परिस्थितियों और स्थानीय लोगों के अनुकूल होने का और उसी प्रकार क्षेत्र के विकास की सही दिशा में आगे बढ़ने और बीच-बीच में खड़ी होने वाली मुसीबतों से सही तरीके से निपटने का भी विश्वास जमता है। अभी सामान्य स्थानीय स्तर के कार्यक्रमों पर भी बाहरी शक्ति का प्रभाव और दबाव रहता है। इससे इन कार्यक्रमों का स्थानीय महत्व काफी कम हो जाता है और उन उद्देश्यों की पूर्ति नहीं होती, जिन उद्देश्यों से प्रायः वे चलाए गए होते हैं।

यह तो सभी जानते हैं कि सिर्फ सरकारी प्रयत्नों द्वारा ही योजनाओं की सिद्धी प्राप्त नहीं की जा सकती। योजनाबद्ध कार्यक्रम तभी सिद्ध हो सकते हैं जब सरकारी मशीनरी को जनता का भी पूर्ण सहयोग मिले। उदाहरणार्थ सरकार अथवा अन्य किसी एजेन्सी द्वारा जनता के उपयोगार्थ कोई स्थाई अथवा स्थिर पूंजी निर्माण कार्य (उदाहरणार्थ एक पाठशाला) करवा दिया जा सकता है, लेकिन उसका समुचित उपयोग करना और उसका निर्माण अथवा समय-समय पर लिपाई-पोताई, साज-सम्भाल मरम्मत-दुरूस्ती आदि करवाते रहना तो स्थानीय जनता का ही काम है। इस प्रकार कहा जा सकता है आर्थिक विकास की सफलता व्यक्तित्व एवं सामुदायिक रूप से जनता द्वारा कार्य में रुचि लेने पर ही अवलम्बित होती है। स्पष्टतः सार्वजनिक अथवा सामुदायिक भागीदारी का अर्थ है- (1) निर्णय लेने में भागीदारी, (2) निर्णय के क्रियान्वीकरण

अर्थात वास्तविक विकास कार्यक्रम में भागीदारी और (3) विकास के फल भोगने में भी भागीदारी।

आत्म-निर्भरता का भाव:- हमारी ग्रामीण प्रजा में यह एक गलत धारणा बन गई है कि विकास कार्यों के लिए बाहरी सहायता अनिवार्य है और उसके बगैर कुछ हो ही नहीं सकता। यह तो माना जा सकता है कि विकास की प्रारम्भिक अवस्था में बाहरी मदद की जरूरत हो सकती है लेकिन अन्ततः तो लोगों को स्वयं पैरों पर ही खड़ा रहना सीखना होगा अर्थात बाहरी सहायता को योजनाएं घड़ने, कार्यक्रम बनाने, जरूरी पूंजी, निर्माण करने आदि तक यथासंभव सीमित रखना चाहिए। आगे के लिए लोगों में उत्साह जागृत करने एवं उनका सहयोग पाने के लिए कार्यक्रमों के परिणामों का समान रूप से वितरण एवं उपभोग होने की भावना और विश्वास को विकसित करना होगा। विकास कार्यों की जिम्मेदारी को महसूस करने के लिए भी सामुदायिक भागीदारी की भावना जगाना जरूरी है।

सामुदायिक भागीदारी से जनता के कल्याण के प्रति जिम्मेदारी महसूस करने एवं प्रशासकीय व्यवस्था के समुचित संयोजन करने में भी सराहना मिलती है। स्थानीय जनता की सक्रिय भागीदारी के परिणामस्वरूप योजनाएं घड़ने अथवा उनके क्रियान्वीकरण के स्तर पर जो भी खामियां रह जाती हों अथवा गलतियां हो रही हों उन्हें तुरन्त ही सम्बन्धित अधिकारियों के ध्यान में लाया जा सकता है जिससे सुधारात्मक कदम समय पर ही उठाए जा सकते हैं। प्रशासन को सिर्फ लोगों के लिए ही काम नहीं करना है बल्कि लोगों के साथ मिल कर काम करना है। लोकतांत्रिक प्रशासन को अपने उद्देश्य, निष्पक्षता, योग्यता और जनसहयोग की प्राप्ति पर विश्वास होना चाहिए। उसको मानवीय आवश्यकताओं, परिस्थितियों, अपेक्षाओं और जन-चेतना के प्रति भी जागरूक रहना चाहिए।

समुचित चयन:- कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन (प्रोग्राम्स इवाल्यूएशन ऑर्गनाइजेशन) के एक अध्ययन से ज्ञात हुआ है कि कई ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में पूंजी निर्माण और लाभार्थियों के चयन दोषपूर्ण रहे हैं। जिनका कोई स्थानीय महत्व नहीं । ऐसे पूंजी निर्माण करने अथवा सम्पत्ति खड़ी करने में कोई तुक नहीं है। सम्पत्ति-निर्माण ऐसे ही होने चाहिए, जो स्थानीय परिस्थितियों के साथ मेल खाते हों, क्षेत्रीय अर्धक्षेत्र को मजबूत बनाते हों एवं लक्षित समूह को लाभ पहुंचाते हों। कई बार ऐसा करते समय लाभार्थियों के चयन में स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में नहीं लिया जाता है। उदाहरणार्थ कई स्थानों पर हरिजनों को सहायक आर्थिक प्रवृत्ति के रूप में दुधारु पशु दिलाए गए। लेकिन वहां इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया गया कि सामाजिक मान्यताओं के कारण लोग उनसे दूध खरीदने को ही तैयार नहीं हैं। ऊपर से योजनाओं के क्रियान्वीकरण करने में ऐसी खामियां रह जाना स्वाभाविक है। इन्हें स्थानीय लोगों की भागीदारी से ही टाला जा सकता है। लोगों की भागीदारी हमें अर्थपूर्ण और उत्पादक-कार्यक्रमों के सफल क्रियान्वीकरण की ओर ले जाने वाली होती है।

अन्नयोदय योजना का अध्ययन करने पर कार्यक्रम-मूल्यांकन-संगठन ने ठीक ही कहा था, "इन परिवारों की आर्थिक उन्नति के कार्यक्रमों के चयन में सम्बन्धित परिवारों को पसन्दगी की अग्रिमता, ग्राम-अर्थतंत्र के वर्तमान स्तर संस्थागत वित्त के साथ ही स्थानीय साधनों की उपलब्धि आदि को भी विचारार्थ किया जाना चाहिए था। बहुत सारे मामलों में लाभार्थियों के चयन में ही अनियमितताएं पाई गई हैं। इसका अर्थ है– अपेक्षाकृत सम्पन्न-वर्ग को योजनाओं का लाभ पहुंचाना।

विभिन्न विभागों अथवा एजेन्सियों में आपसी सहयोग एवं संकायन नहीं होने से भी ग्रामीण विकास कार्यक्रम कई बार असफल रहते हैं। उदाहरणार्थ- लाभार्थियों को दुधारू पशु देने से ही योजना की सिद्धि नहीं हो सकती, यदि वहां पशु चिकित्सा, घास-चारा और दूध बिक्री की भी समुचित व्यवस्था नहीं हो, ऐसी परिस्थितियों में ये पशु भी लाभार्थियों पर उल्टे बोझ कहे जाते हैं। ऐसी स्थितियों में योजना के क्रियान्वीकरण में लोगों की सक्रिय भागीदारी होने पर विभिन्न विभागों से सहायता एवं सहयोग पाने में काफी बल मिलता है।

मूल्यांकन:- ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की असफलता का एक दूसरा कारण उचित निगरानी का अभाव भी है। किसी कार्यक्रम को प्रारम्भ करने से पहले ही सम्बन्धित क्षेत्र का उसकी विकास संभावनाओं पर दृष्टि से भी मूल्यांकन किया जाना चाहिए। विभिन्न कार्यक्रमों का भी अन्य क्षेत्र की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए क्रियान्वीकरण के दौरान उसमें उत्पन्न होने वाली बाधाओं की दृष्टि से भी

मूल्यांकन किया जाना चाहिए। कार्यक्रम का उसके अंतिम परिणामों पर वास्तविक उपयोगिता की दृष्टि से भी मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इन सभी स्तरों के मूल्यांकनों के लिए लोगों की सक्रिय भागीदारी होना बहुत उपयोगी होता है। कार्यक्रम के क्रियान्वीकरण में लोगों की सक्रिय भागीदारी से सभी-स्तर के प्रशासन पर एक बहुत से निगरानी और नियंत्रण रहता है और भ्रष्टाचार को बहुत ही कम किया जा सकता है।

संकलित उपक्रम :- सामुदायिक भागीदारी का महत्व उस हालत में बढ़ जाता है। जब यह महसूस होता है कि ग्रामीण गरीबों को सरकार अथवा बाहरी एजेन्सियों से एक तरफा सहायता की ही जरुरत नहीं है बल्कि विकास की प्रक्रिया में एक समन्वित उपक्रम की आवश्यकता है। अन्य जरूरी सुविधाओं के अभाव में सिर्फ पूंजीनिर्माण से ही ग्रामीण गरीबों की आर्थिक अथवा सामाजिक स्थितियों में सुधार होने वाला नहीं है। विभिन्न कार्यक्रमों के लिए बैंक-ऋण की भी आवश्यकता हो सकती है। लेकिन यदि ग्रामीण गरीबों को साथ-साथ कई अन्य सेवाएं और सुविधाएं उपलब्ध नहीं हो पाई। तो बैंक-ऋण भी कभी-कभी महत्वहीन हो जाता है। संक्षेप में ग्रामीण पुनर्निमाण का कार्यक्रम विविध लक्षी और विविध आयामों वाला है और उसके लिए विभिन्न सरकारी विभागों, विभिन्न गैर-सरकारी एजेन्सियों एवं स्वयं लाभार्थियों के मिले-जुले प्रयत्न और परिश्रम की आवश्यकता है।

विकास कार्यक्रमों में जनता की भागीदारी लोगों में राजनैतिक चेतना और रुचि उत्पन्न कराती है। उन्हें लोकतंत्र के लिए प्रशिक्षित करती है। यह सरकारी विकास-खर्चों की दिशा, आयतन और प्रकृति के निर्धारण अर्थात कितना, कैसे और किस हेतु खर्च किया जाए को प्रभावित करती है। हमारे यहां एक अन्-अनुकूल शक्ति केन्द्र निर्माण लेने तथा कार्यक्रमों को क्रियान्वित करने और उनमें सामुदायिक भागीदारी के बीच रोड़े अटकाता रहा है। अतएव गांवों में किसानों की सेवा समितियों जैसे संगठनों के जिनमें ग्रामीण गरीबों का समुचित प्रतिनिधित्व होता हो, गठित होने और उनके विस्तार एवं व्यापकता की आवश्यकता है। ऐसे संगठनों को ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में समुचित महत्व दिया जाना चाहिए।

इस प्रकार सामुदायिक भागीदारी के अनुभवजन्य योजनाएं, साधनों का बेहतर संयोजन, श्रम एवं वित्त, बेहतर क्रियान्विति, व्यवस्थापन एवं प्रशासन बुद्धि के विकास के बेहतर अवसर, सामाजिक गतिविधियों के निम्नतम स्तर पर बेहतर समन्वय, कार्यक्रमों की सफलता का बेहतर मूल्यांकन, भ्रष्टाचार में कमी, लेकिन सर्वाधिक महत्वपूर्ण कार्यक्रमों के लाभ या प्रतिफल का बेहतर बंटवारा आदि कई लाभ हैं।

अन्ततः तो लोगों को स्वतः ही अपनी समस्याओं से जूझना सीखना है और समाधान खोजने हैं। यह विकास-कार्यक्रमों में क्रमशः सामुदायिक भागीदारी के बढ़ते रहने से ही संभव हो सकता है।

82 कसारवाड़ा,
बांसवाड़ा (राज) पिन. 327001

पृष्ठ 13 का शेष

क्षतिपूर्ति अन्ततः वैध विद्युत उपभोक्ताओं को ही करनी पडती है।

प्रदेश के त्वरित आर्थिक विकास हेतु विद्युत मांग तीव्रता से बढ़ती जा रही है। विद्युत क्षेत्र की कार्यकुशलता में सुधार हेतु पर्याप्त सम्भावनायें हैं जिस पर प्रदेश सरकार जागरूक भी है। उत्तर प्रदेश एक विशाल राज्य है और इसकी आवश्यकतायें और समस्यायें भी उसी अनुपात में अधिक हैं किन्तु इन समस्याओं का निराकरण भी आवश्यक है। विद्युत समस्याओं के निराकरण में विद्युत विभाग और सरकार के साथ ही जन सहयोग की बड़ी आवश्यकता है। आशा है निकट भविष्य में अधिकतर गांवों को विद्युत उपलब्ध होने लगेगी जिससे ग्रामीण आर्थिक विकास की गति में तीव्रता आयेगी।

78, छोटा बघाड़ा,
इलाहाबाद- 2

संत कबीर के नाम को सार्थक करती कबीर बस्ती

नारायणसिंह राठौड़

आज से कोई ढाई दशक पूर्व स्थापित कबीर बस्ती के लोगों ने कभी यह कल्पना भी नहीं की होगी कि उनका कर्मयोग उन्हें स्वावलम्बन जैसा ठोस फल प्रदान करेगा।

राजस्थान के सीमावर्ती एवं मरुस्थलीय जिले जैसलमेर से कोई 60 किलोमीटर दूर कबीर बस्ती गांव संत कबीर के जुलाहा कर्म की डोर थामे 1961 में इस नाम से वर्तमान स्थल पर अवतरित हुई। ग्राम पंचायत पारेवर के सत्रह परिवारों से शुरू हुए इस गांव में अब 85 परिवार हो गये हैं।

राज्य के सर्वोदयी विचारक स्व. गोकुल भाई भट्ट की प्रेरणा एवं नामकरण से प्रारंभ इस कबीर बस्ती में 6 अप्रैल, 1962 में कबीर बस्ती खादी उत्पादक सहकारी समिति की स्थापना की गई। ग्राम पंचायत पारेवर एवं तेजपाला एवं 1981 से ग्रामदानी ग्राम कबीर बस्ती (गांव) में इस समिति ने अपनी जड़ें इस कदर जमाई हैं कि प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी स्वयं इन बुनकरों से मिलने आये।

समिति के माध्यम से इन गांवों के 900 कतिनों, 150 बुनकरों एवं नौ कार्यकर्त्ताओं के परिवारों को जीविकोपार्जन के अवसर मिले हैं। वर्तमान में 47 करघे कबीर बस्ती में, 30 तेजपाला में, 15 नगा में तथा 15 करघे पारेवर में स्थापित हुए हैं। यहां के बुनकरों ने मिलकर वर्ष 1984-85 में जहां कुल 10 लाख 10 हजार रुपये की ऊनी खादी का उत्पादन किया वहीं वर्ष 1986-87 में यह राशि बढ़कर लगभग 12 लाख रुपये हो गई। इस दौरान 5 लाख 90 हजार रुपये मूल्य की थोक तथा 6 लाख 80 हजार रुपये की फुटकर ऊनी एवं एक लाख दो हजार रुपये की फुटकर सूती खादी की विविध सामग्री का विक्रय किया गया। मजदूरों को भी लगभग तीन लाख पांच हजार रुपये की मजदूरी का भुगतान किया गया।

इस समिति को खादी बोर्ड से 16 लाख 47 हजार रुपये का कार्यकारी ऋण तथा तीन लाख रुपये का अकाल ऋण सुलभ करवाया गया है। बस्ती में एक वर्ष में 4000 किलोग्राम मेरीनों तथा तीन हजार किलोग्राम देशी ऊन की

पानी का टांका

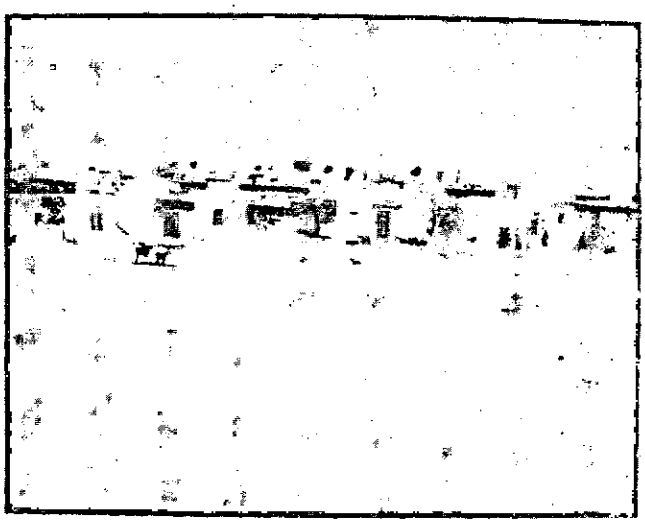

कबीर बस्ती में पक्के मकान

खपत होती है। ग्रामीण कताई कार्य में धागे के अनुसार एक रुपये 65 पैसे से दो रुपये 10 पैसे प्रति किलोग्राम कताई मजदूरी लेते हैं तो चार रुपये 60 पैसे से 35 रुपये प्रति नग की बुनाई कर प्रतिमाह 300 से 350 रुपये कमा सकते हैं।

बुनकरों के लिये उनकी बस्ती में बैंक ऋण एवं अन्य संस्थागत वित्तीय सहयोग से 85 पक्के बुनकर शेड बन चुके हैं। इनके अलावा समिति के भवन के बरामदे में स्थाई करघों की कारगर व्यवस्था है।

राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम के माध्यम से भी कबीर बस्ती में पक्का पंचायत घर, अध्यापक आवास, स्कूल भवन एवं पानी की टंकी निर्मित है। इसके अलावा गांवाई तालाब की खुदाई का कार्य भी राहत कार्यों के तहत करवाया गया है।

शिक्षण सुविधाओं का ध्यान इस गांव में अपेक्षाकृत उत्साहवर्धक रहा है। कबीर बस्ती में प्राथमिक विद्यालय के अलावा नगा एवं तेजपाला में एक-एक प्राथमिक एवं खींया में सैकण्डरी स्कूल है। सात किलोमीटर दूर खींया गांव में ही डाकघर, आयुर्वेद अस्पताल एवं पेयजल योजना है जहां से कबीर बस्ती को पेयजल योजना से जोड़ा गया है। कबीर बस्ती के अध्यापक श्री चेतन राम, स्वयं स्नातक (द्वितीय वर्ष) के विद्यार्थी हैं, प्रौढ़ शिक्षा से 30 व्यक्तियों को तथा सुश्री सुंदर जो पांचवीं कक्षा पास हैं महिलाओं प्रौढ़ शिक्षण का काम कर रहे हैं।

एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत कबीर बस्ती के 8-10 परिवारों को भेड़ इकाईयां तथा 5-6 परिवारों को ऊंट सुलभ करवाये गये हैं। परिवार कल्याण कार्यक्रम में भी यह गांव अग्रणी है। अध्यापक श्री चेतन राम का कहना है कि अब केवल दो या तीन जोड़े ही बचे हैं जिन्हें इस कार्यक्रम से लाभान्वित होना है। ग्रामीण वृक्षारोपण के प्रति भी सजग हैं तथा अब तक लगभग 50-60 वृक्ष लगा चुके हैं जो जिंदा हैं।

आवश्यक उपभोक्ता वस्तु वितरण के लिये सात किलोमीटर दूर खींया में ग्राम सेवा सहकारी समिति कार्यरत है तथा परिवहन के लिये दो बसों से आवागमन की सुविधा है।

वयोवृद्ध बुनकर श्री बख्ताराम अपने करघे पर पट्टी बुनता हुआ कहता है कि वे लगभग 50 वर्ष से बुनाई करते आ रहे हैं। इस बस्ती के बसावट के साथ उनका परिवार यहां आ गया। चार पुत्र एवं तीन पुत्रियों के पिता श्री बख्ताराम ने बताया कि बुनाई के बल पर ही उनका एक पुत्र पढ़ लिखकर जैसलमेर में नौकरी कर रहा है तथा अपने परिवार का भरण पोषण कर रहा है। उनका दूसरा बच्चा खींया छात्रावास में रहकर नौवीं कक्षा में पढ़ रहा है तथा दो बच्चे क्रमशः तीसरी एवं दूसरी कक्षा में पढ़ रहे हैं।

उसने कहा कि उन्होंने गांव में अपना पक्का मकान बना लिया है तथा पति-पत्नी दोनों मेहनत से कताई-बुनाई कर अपना जीविकोपार्जन कर रहे हैं। "धीणे धापे" के रूप में दो गायें एवं दो बकरियां भी उन्होंने पाल रखी हैं।

श्री बख्ताराम का कहना है "स्सान-संतोषी सदा सुखी आदमी आपरी मैनत करेला तो उनरो पक्र उननें मिलैताई।"

कबीर बस्ती के ये कबीर अपने कबीर व्यवसाय के विकास के लिये सपने बुनते हुए बढ़ रहे हैं अपने ही अन्य साथियों से आगे अपनी मेहनत, मशक्कत एवं स्वावलंबन के बल पर।

सूचना एवं जन सम्पर्क अधिकारी
जैसलमेर (राज.)

कृषि में यंत्रीकरण से लाभ

अजय कुमार श्रीवास्तव

आज का युग वैज्ञानिक युग के नाम से जाना जाता है। विज्ञान हमारे लिए एक ऐसा विश्वसनीय वरदान साबित हुआ है जिसने मानव समाज हो या जीवमंडल प्रत्येक की समस्याओं का समाधान किया है तथा आज जो असंभव-सा लग रहा उसे संभव में बदलने के लिए सक्रिय है।

अब हम 21वीं सदी में कदम रखने ही वाले हैं। 21वीं सदी यानि विकास की एक अनोखी सदी जहां हमारे सामने कोई विकट समस्या उपस्थित नहीं होगी, किन्तु हम अपनी कुछ कमियों को सुधार नहीं पा रहे हैं तो हम 21वीं सदी की अनोखी कल्पना या उद्देश्य को कैसे साकार कर पाएंगे? यूं तो हम सब में अनेक कमियां हैं जो हमारे विकास के मार्ग में विशेष बाधा उत्पन्न कर रही हैं। आज उन कमियों में से एक कमी यह है जिस पर बहस करना एवं सचेत हो जाना अनिवार्य-सा लगता है क्योंकि जब तक हम अपनी कमियों से परिचित नहीं होंगे तथा सुधार करने की कोशिश नहीं करेंगे तब तक हम न तो उन्नति कर सकते हैं और न हम पूर्णतया आत्मनिर्भर बन सकते हैं।

हमारे देश की जनसंख्या जिस रफ्तार से बढ़ रही है उस रफ्तार से खाद्यान्न उत्पादन नहीं बढ़ रहा है। ऐसा नहीं है कि हमारे यहां भूमि की कमी है, लेकिन इसका सही तरीके से उपयोग किया जाए तो हमारे यहां खाद्यान्न उत्पादन इतना हो सकता है कि निर्यात के क्षेत्र में हम विश्वभर में तहलका मचा सकते हैं। अगर हम चाह लें तो अपने राष्ट्र को तथा अपने आपको पूर्णत: आत्मनिर्भर बना सकते हैं।

कृषि के क्षेत्र को विकसित करने हेतु समय के बदलते वैज्ञानिक विकास के साथ तालमेल करना अति आवश्यक है। हमें आधुनिक युग यानि वैज्ञानिक युग का सहारा लेकर कृषि क्षेत्र में यंत्रीकरण को अपनाना होगा। यंत्रीकरण कृषि विकास का एक ऐसा माध्यम है जो हमारी कृषि व्यवस्था को विकसित कर सकता है एवं ग्रामीणों को आत्मनिर्भर बनाकर गरीबी, बेकारी, भुखमरी से मुक्ति दिला सकता है।

यंत्रीकरण के नाम से ग्रामीण या कृषक घबरा जाते हैं जबकि उन्हें भी कभी कभार इसका सहारा लेना भी पड़ता है। यंत्रीकरण कृषि उत्पादन में कितना सहायक होता है इससे पहले भारत की कृषि व्यवस्था पर संक्षिप्त नजर डालना अति आवश्यक हो गया है।

भारत गांवों का देश है क्योंकि भारत की 76.3% जनसंख्या लगभग 6052441 गांव में निवास करती है। विश्व में शायद ही इतने गांव कहीं हैं। यदि इसकी अन्य देशों से तुलना की जाए तो पता चलता है कि यूगोस्लाविया में 58%, चैकोस्लोवाकिया में 37%, इराक में 28%, अमेरिका में 27%, जापान में 22%, कनाडा में 20%, आस्ट्रेलिया में 11% तथा ब्रिटेन में 9% लोग गांवों में निवास करते हैं। भारतीय राष्ट्रीय आय में आज भी 50% कृषि क्षेत्र का ही योगदान है। भारत की भूमि धनी है किन्तु यहां के लोग निर्धन हैं क्योंकि यहां की कृषि व्यवस्था अत्यन्त ही पिछड़ी है तथा निम्न स्तरीय है। इसका मुख्य कारण है कृषि क्षेत्र में यंत्रीकरण का अभाव। इसलिए आज कृषि उत्पादन को बढ़ाने हेतु आधुनिक खाद, बीज, कीटनाशक दवाओं की तरह यंत्रीकरण को अपनाना जरूरी हो गया है।

यन्त्रीकरण क्या है?- कृषि में यंत्रीकरण से आशय है कि खेत में जुताई से लेकर मण्डी तक फसल पहुंचाने के सभी कार्यों में मशीनों और यंत्रों का प्रयोग करना। किन्तु हमारे यहां कुछ कार्यों तक ही यंत्रीकरण का प्रयोग तथा शेष कार्य मानव श्रम ।जैसे-तैसे पूरा करता है। ऐसी यंत्रीकरण व्यवस्था को हम आंशिक यंत्रीकरण व्यवस्था के नाम से भी जानते हैं। आंशिक रूप से यंत्रीकरण अपनाना विकास के

मार्ग में बाधक ही है।

कृषि कार्य में उपयोग लाये जाने वाले प्रमुख यंत्रों में ट्रैक्टर, थ्रेसर, कम्बाइण्ड ड्रिल, हार्वेस्टर, प्लान्टर, क्रेसर, पम्पिंग सेट इत्यादि हैं।

ट्रैक्टर के द्वारा भूमि जोती जाती है। कभी-कभी सिंचाई का काम भी किया जाता है एवं प्रायः माल ढ़ोने के काम में भी प्रयोग किया जाता है। कम्बाइण्ड ड्रिल के द्वारा खाद एवं बीज एक साथ खेत में डाले जा सकते हैं। हार्वेस्टर के द्वारा कम समय में फसलों की कटाई की जा सकती है। प्लान्टर भूमि कुरेदने का तथा बीज बोने का काम करता है। थ्रेसर गेहूं गहाने का काम करता है। क्रेशर से गन्ने को पेरकर रस निकाला जाता है एवं पंम्पिंग सेट खेत में कृत्रिम पानी पहुंचाकर सिंचाई का काम करता है। पम्पिंग सेट का एक और रूप ट्यूबवेल है।

यंत्रीकरण से लाभ- हम किसी भी कार्य को प्रारंभ करने से पूर्व एक अनुमानित लाभ का हिसाब बना लेते हैं इसलिए कृषकों को यंत्रीकरण के लाभ से परिचित होना भी आवश्यक है। यंत्रीकरण से निम्नलिखित फायदे हैं:-

1. खाद्यान्न उत्पादन में वृद्धि होती है। उदाहरण स्वरूप ट्रैक्टर द्वारा गहरी जुताई होती है जिससे उपज में 20 से 30 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी हो जाती है।
2. यंत्रीकरण से कृषि कार्य शीघ्रतापूर्वक एवं आसानी से पूरा हो जाता है जिससे समय से सभी फसल को बोया जा सकता है।
3. पथरीली, ककरीली, उबड़-खाबड़ एवं बंजर भूमि को यंत्रीकरण से ही उपयोगी बनाया जा सकता है।
4. कृषि यंत्रीकरण उत्पादन लागत में कमी लाता है जिससे धन की बचत एवं लाभ उठाया जा सकता है।
5. यन्त्रीकरण से व्यापारिक कृषि का विस्तार किया जा सकता है। इससे नियत कार्य मानव श्रम की अपेक्षा कम समय में हो जाने से प्राकृतिक जोखिम भी कम हो जाता है। यंत्रों की सहायता से कृषि के साथ-साथ अन्य उद्योग धंधे जैसे अनाज साफ करना, धान कूटना, तेल पेरना तथा आटा पीसना आदि कार्य से लाभ उठाया जा सकता है। यंत्रीकरण से श्रम की कुशलता में वृद्धि हो जाती है।

यंत्रीकरण रोजगार में सहायक- यद्यपि अनेक विचारकों एवं अर्थशास्त्रियों का मत है कि कृषि में यंत्रीकरण से और ज्यादा बेकारी बढ़ेगी क्योंकि एक मशीन अनेक मानव श्रम को बेकार कर देगी किन्तु बात यहीं तक सीमित नहीं है। यंत्रीकरण से दीर्घकाल में रोजगार में वृद्धि होगी। कृषि यंत्रों के प्रयोगों से मरम्मत उद्योग पनपेगा। व्यापारिक कृषि से सहायक एवं अन्य उद्योग स्थापित होंगे तथा पुराने उद्योगों का विस्तार होगा। परिवहन की और अधिक आवश्यकता पड़ेगी। किसानों की आय बढ़ने से उनका जीवन स्तर ऊंचा होगा एवं रोजाना नई-नई वस्तुओं की मांग बढ़ेगी जिसका प्रभाव रोजगार बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगा। इस आधार पर स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि यंत्रीकरण से रोजगार का अवसर खुल जाएगा क्योंकि आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है। इसलिए तकनीकी गड़बड़ियों को सुधारने के लिए सुधारकों की आवश्यकता पड़ेगी और ये सुधारक आज के बेरोजगार ही होंगे। यंत्रीकरण वास्तव में चारों तरफ से लाभदायक सिद्ध होगा बशर्ते हमारे कृषक भाई इसे अपनाएं।

सरकारी सुविधा कृषक भाई सामूहिक रूप से उठा सकते हैं। इसके लिए युवा कृषकों को, क्षेत्रीय सामाजिक कार्यकर्त्ताओं, विधायकों, सांसदों तथा संबंधित क्षेत्र के अधिकारियों की भी कुछ जिम्मेदारी है कि वे कृष्कों को आधुनिक यंत्रों से लैस करके और समुचित सुविधायें उपलब्ध करवायें ताकि वे लोग हरित क्रांति की ओर अग्रसर हो सकें और जो सपना हमने 21वीं सदी के लिए सोचा उसको साकार कर सकें। क्योंकि जब तक ये लोग कृषक में सही तथ्य, सही जानकारी तथा सुविधा प्रदान नहीं करेंगे तब तक न कृषि में वास्तविक हरित क्रांति आ सकती है न ही हम 21वीं सदी की कल्पना को साकार कर सकते हैं।

61सी/1ए ओमगायत्रीनगर
चांदपुर सलोरी, इलाहाबाद-211004

दुखों का पहाड़ और सुखों की सरिता

प्रेम चन्द्र सैनी

समय-प्रातः 10 बजे।

स्थान- गांव में किसान का खेत और नीम का भारी पेड़, काफी भीड़ हो रही है। एक साहबी कपड़ों में दो व्यक्ति कुर्सी-मेज लगाये बैठे हैं, एक चपरासी और एक कुड़कुड़ी बजाने वाला साथ आता है। कुडम कुडम कुडम... कुडम कुडम... छोटे नगाड़े की आवाज के बीच चपरासी जोर से चिल्लाता है।

चपरासी- अट्ठारह सौ एक, अट्ठारह सौ दो। जो बढ़े सो पाये। बोलो भाई बढ़ो, बढ़ो।

एक- उन्नीस सौ।

दूसरा- बीस सौ।

चपरासी- बीस सौ एक, बीस सौ दो, अरे सिर्फ बीस सौ। बढ़िये, बढ़िये, अरे भाइयों कौड़ियों के मोल जा रही है इतनी जमीन। बढ़ो भाई बढ़ो। सोच विचार में न पड़िये अभी तो चौथाई कीमत नहीं आई, ऐसा अवसर हाथ नहीं लगेगा, बोलिये... बढ़िये... बढ़िये कोई नहीं... बीस सौ एक... बीस सौ दो... बीस सौ तीन।

बोली लगाने वाले के दस्तखत लिए गये। भीड़ धीरे-धीरे बातें करते हुए बिखर जाती है। अलगू किसान अपनी आंखों में आंसू लिए एक तरफ कागज पर हस्ताक्षर करके चला जाता है।

एक- अरे भाई अलगू बिचारे की आधी जमीन कौड़ियों के मोल चली गई।

दूसरा- उसके साथ बड़ा धोखा हुआ।

पहला- हां भाई तुम ठीक कहते हो।
क्या होत पछताये जब चिड़िया चुग गई खेत।

दूसरा- बेचारे के ऊपर दुखों का पहाड़ टूट पड़ा।

पहला- क्या बतायें भई उसने बुद्धि से काम नहीं लिया।

दूसरा- सेठ धन्नूमल ने उस बेचारे की जमीन ही सूद में हड़प करवा दी।

पहला- धन्नूमल का सूद तो कभी चुकता ही नहीं। वह तो सुरसा का मुंह है भाई।

दूसरा- इन सेठों ने कितनों को बेसहारा कर दिया है। इनसे भगवान बचाये।

(धीरे–धीरे आँखों से ओझल हो जाते हैं)

अलगू- (पत्नी को देखकर आंखों में आंसू भर जाते हैं) मैं तो लुट गया रधिया, रधिया अब क्या करूं। कुँआ और जमीन बे-मोल चली गई। लगता था कुछ लोग मिलकर बोली लगा रहे थे, बीस सौ से आगे कोई बढ़ा ही नहीं।

रधिया- (मुरझाई आवाज से) अब क्या हो सकता है। जो भाग्य में था वह तो होना ही था, अब हिम्मत हारने से कैसे काम चलेगा। हारिये न हिम्मत बिसारिये न हरि नाम।

अलगू- राधा अब क्या होगा? मेरी तो अक्ल ही काम नहीं करती।

रधिया- मैंने तो पहले ही कहा था, लेकिन तुम मेरी मानते ही कब हो।

अलगू- अरे रधिया समुद्र में रहकर मगर से बैर कैसे हो सकता है। गांव में रह कर गांव वालों और बिरादरी का कहना न मानता यह कैसे होता।

रधिया- लेकिन कुछ समझदार लोगों ने भी तो मना किया था। अब जिनका कहना मानकर बाप की तेरहवीं कर्जा लेकर की उनके पास ही जाओ ना। मेरी कौन सुनता था।

अलगू- सुनता क्या? तूं ही बता सारे बिरादरी वाले और गांव के लोग कहते थे कि बाप की तेरहवीं नहीं की तो उसकी मुक्ति नहीं होगी। तब क्या

करता, तू ही बता एक हजार कर्ज लिया था।वह तो पांच वर्ष में दुगुना हो गया। सेठ ने पहले तो हिसाब कुछ और बताया था बाद में कुछ और कर दिया।

रधिया- अरे तो सेठ के हाथ जोड़ते पांव पड़ते अगली फसल पर कुछ दे देते।

अलगू- तू तो अगली फसल की बात कहती है मैं तो हर फसल पर देता रहा हूं। वह तो कहता था बाप ने पोते की छठी की थी तब के ही कुछ बकाया थे फिर तू भी तो लेता रहा। यह तो कर्म का खेल है।

रधिया- रामधन ने जब समझाया था कि कर्ज लेकर तेरहवीं न करो तब कान नहीं दिया अब भोगो। हां मेरी मानो तो रामदान से माफी-मांगो और रबी की फसल के लिए उनसे अपने कुंए से पानी देने की विनती करो।वह भले आदमी हैं हमारी मदद करेंगे।

अलगू- मैं क्या मुँह लेकर रामधन से मदद को कहूँ। मैंने उनकी बात मानी नहीं इसी से यह दिन देख रहा हूं।

रधिया- जाओ तो। यहीं पर बैठे समझ लिया कि रामधन काका नहीं सुनेंगे। वह ब्लाक जाते रहते हैं।ग्राम सेवक की बातों पर अमल करते हैं। उनकी खेती अब कैसी अच्छी हो रही है।

अलगू- कल तड़के जाऊंगा।

(दूसरे दिन अलगू रामधन से मिलने जाता है)

अलगू- काका राम राम।

रामधन- तुम्हारे साथ बड़ा अन्याय हुआ है।

अलगू- (आह भर कर) दैवयोग काका। क्या करूं। समझ में नहीं आता है। आषाढ़ की फसल तो वर्षा के पानी से उपज जायेगी लेकिन रबी कैसे उपजेगी। कुंआ था वह भी नीलामी पर चढ़ गया।

रामधन- बिना पानी के रबी नहीं हो सकेगी।

अलगू- काका मैं कब कहता हूं। आप अपने कुंए से सींच लेने दो। रहट में अपने बैल जोत लूंगा।

रामधन- अरे मुझे कोई एतराज थोड़े ही है लेकिन हमारे कुंए में तो पानी इतना नहीं है कि तुम्हारे खेतों की पूर्ति हो जाय। (कुछ सोच कर) लेकिन एक तरकीब है। तुम अपने पच्चीस बीघे वाले चक्र में एक नया कुआं तैयार करो। उसमें बोरिंग करा के रहट लगवा लो।

अलगू- काका मेरे लिए तो अब कुंआ बनवाना आकाश की तरोयां लाना है। आप तो जानते हैं पैसा कहां है। इस काम के लिए तो हजारों रुपया चाहिए कहां से मिलेंगे। एक बार कर्ज लिया तो यह दिन देखना पड़ रहा है। बाप दादा का बनाया कुंआ भी गवां दिया।

रामदान- मेरी बात पर गौर करो। तुम्हें कर्जा महाजन से नहीं लेना है। भूमि विकास बैंक से भी सभी किसानों को चाहे भूमिधर हो चाहे सीरदार, कुँआ बनाने, बोरिंग कराने, रहट, पम्पिंग सेट, ट्यूबवेल, ट्रैक्टर, फलों का बाग लगाने आदि कार्यों के लिए कर्जा मिलता है।

अलगू- हम तो भूमिधर हैं। लेकिन सूद और असल कैसे अदा होगा। बैंक ! कर्जा मैं नहीं लूँगा।

रामधन- बैंक ने असल सूद की अदायगी के लिए किसानों को सुविधा दी है। इन कर्जों पर सूद बैंक बहुत कम लगाता है। और कुंआ बनाने, रहट लगाने और बोरिंग के लिए अदायगी वार्षिक किश्तों में करनी होगी।

अलगू- (उत्सुक होकर) तब तो काका हमें लगता है दुख दूर हो जायेगा। इसके लिए क्या करना होगा। कहां से कर्जा मिलेगा, कैसे मिलेगा।

रामदान- सोमवार को गांव के बैंक में किसान सेवक आ रहे हैं। उनसे तुम्हें मिलवाएंगे। वे सारा तरीका बता देंगे।

अलगू- अच्छा काका। आपने बैंक से सहायता लेकर कुंआ बनाने का रास्ता बताकर मुझे मिटने से बचा लिया।

(अलगू प्रसन्न मुद्रा में अपने घर की ओर जाता है, रास्ते में गनेश मिलता है)

गनेश- अलगू भैया राम राम! आज तो तुम खुश नजर आ रहे हो। क्या? महाजन से फिर कर्जा मिलने का वादा मिल गया।

अलगू- महाजन, जमराज का स्वरूप। भगवान बचाये मैंने कुंआ बनाने का जुगाड़ कर लिया है।

गनेश- कुंआ, अरे कुंआ। कुंआ बनाने में तो हजारों रुपया चाहिए क्या घर में गड़ी लक्ष्मी मिल गई।

अलगू- नहीं भाई ऐसे भाग्य कहां। मैं भूमि विकास बैंक से कर्जा लेकर कुंआ बनाऊंगा। सोमवार को किसान सेवक गांव में आ रहे हैं उनसे मिलूंगा।

गनेश- मैं भी नदिया के किनारे वाले खेत के लिए पंम्पिग सेट लगाना चाहता हूं। ताल के किनारे वाले खेत में एक बड़ा बांध भी डालना है ताकि पानी रोक कर धान की खेती कर सकें। क्या इन कामों के लिए भी बैंक कर्जा देता है।

अलगू- खेतों के सुधार करने के लिए सभी आवश्यक कार्यों, सिंचाई बन्धिया, पक्की नालियाँ, नलकूप निर्माण आदि सभी कार्यों के लिए ऋण मिलता है। सोमवार को प्रधान की चौपाल पर आ जाना।

(अलगू प्रसन्न मुद्रा में घर पहुंचता है।)

रधिया- मालूम पड़ता है काका ने पानी कुंए से देना मंजूर कर लिया है।

अलगू- काका के कुंए में पानी इतना कहां कि हमारा भी पूरा पड़ जाये। अब तो भगवान ने चाहा तो अपना ही कुंआ बन जायेगा। भूमि विकास बैंक से आसान वार्षिक किस्तों पर कर्ज ले लूंगा और अपने चक पर कुंआ बनवाकर उसमें रहट लगवा लूंगा। फिर तो धन-अन्न से भर जायेगा घर।

रधिया- सच! मैंने तो पहले कहा था काका रामधन के पास जाओ जरूर कोई जुगत बतायेंगे।

(सोमवार का दिन, समय दोपहर, स्थान प्रधान की चौपाल)

प्रधान- भाइयों हमारे शुक्लाजी किसान सेवक मौजूद हैं। यह आप लोगों को उत्तर प्रदेश भूमि विकास बैंक से किसानों की खेती के सुधार के लिए दी जाने वाली सुविधाओं के बारे में बतायेंगे।

किसान सेवक-भूमि विकास बैंक ने किसानों को ऋण की सुविधा प्राप्त कराने के लिए जिले की हर तहसील पर एक शाखा खोली है।

जानकी- बैंक किन-किन कार्यों के लिए कर्जा देता है।

किसान सेवक-बैंक सिंचाई के पक्के कुंए, पम्पिंग सेट, आयल इंजन, कूप बोरिंग, आर्टीजन बोरिंग तथा पिट बोरिंग, रहट, वाटर लिफ्ट, नलकूप निर्माण, ट्रैक्टर, बन्धी निर्माण, सिंचाई की पक्की नालियां, पावर टिलर, पत्तों की खेती के लिए ऋण देता है।

अलगू- मैं कुंआ बनाकर रहट लगाना चाहता हूं। मुझे क्या करना होगा।

किसान सेवक-तहसील की बैंक शाखा से 10 पैसे में प्रार्थना पत्र का फार्म मिलता है। ऋण लेने के हर इच्छुक व्यक्ति को सर्वप्रथम प्रार्थना पत्र प्राप्त करना चाहिए। बैंक से लघु सिंचाई अथवा अन्य कृषि कार्यों के लिए जो भी ऋण स्वीकृत होते हैं वे भूमि को बैंक के पक्ष में बन्धक रखने के बाद दिये जाते हैं। ऋण प्रार्थना पत्र के फार्म को चालू फसली सन खसरा व खितोनी की नकल अथवा चकबन्दी क्षेत्र में चकबन्दी आकार पत्र 23 या 45 की प्रमाणित प्रतिलिपि के साथ में प्रार्थी को अपना एक फोटो भी लगाना होता है जो ग्राम प्रधान, क्षेत्र प्रभुत्व, बी.डी.ओ., तहसीलदार अथवा किसी राजपत्रित अधिकारी द्वारा प्रमाणित होना चाहिए। फोटो को संसद सदस्य अथवा विधान मण्डल के सदस्य भी प्रमाणित कर सकते हैं।

अलगू- अच्छा, और क्या करना पड़ेगा?

किसान सेवक - ऋण प्रार्थना पत्र के साथ सम्बन्धित तहसील, विकास क्षेत्र, गांव की सहकारी समिति अथवा व्यवसायिक बैंकों में बकाया न होने का प्रमाणपत्र भी जमा करना होगा।

यदि प्रार्थी के पास 5 एकड़ से कम भूमि है तो उसे अपने तहसील के तहसीलदार से प्रमाणपत्र अथवा उक्त आशय का शपथ पत्र भी दाखिल करना होगा जिससे छोटे कृषक होने की सुविधायें दी जा सकें।

अलगू- ठीक है भाई। अंच्छा अब यह बताइये कि क्या कुछ पैसा वैसा भी जमा करना पड़ेगा मुझे।

किसान सेवक - प्रार्थना पत्र के साथ सभी आवश्यक कागजात जमा करने के बाद ऋण स्वीकृत होने की दशा में स्वीकृत धनराशि का प्रार्थी को 5 प्रतिशत हिस्से के रूप में (बीस रुपये के गुणक में) तथा 1 रु. सदस्यता शुल्क जमा करना होगा। साथ ही प्रशासनिक फीस 90 पैसे प्रति

सैंकड़ा के हिसाब से जिसकी न्यूनतम सीमा 5 रु. तथा अधिकतम सीमा 80 रु. है जमा करनी होगी। दो रुपया बन्धक पत्र लेखन फीस भी जमा करनी होगी।

सम्मिलित खाते की दशा में मुख्य प्रार्थी को साधारण सदस्य तथा अन्य को नाम मात्रिक सदस्य बनाया जाता है जिसके लिए सदस्यता शुल्क 1 प्रतिशत प्रति सदस्य जमा करना होगा। यदि स्थानीय जांच पर प्रार्थी की ऋण प्राप्त करने की क्षमता उस की मांग के अनुरूप पाई गई और ऋण प्रार्थना पत्र में प्रस्तावित बन्धकीय भूमि पर प्रार्थी का स्वामित्व वैधानिक रूप से सही पाया गया तो 10,000/- तक के प्रार्थना पत्र बैंक की शाखा प्रबन्ध समिति के समक्ष स्वीकृति हेतु प्रस्तुत किये जायेंगे तथा इससे अधिक के प्रार्थना पत्र बैंक के मुख्य कार्यालय लखनऊ भेजे जायेंगे। ऋण स्वीकृत होने के तुरन्त बाद प्रार्थी को ऋण स्वीकृति पत्र भेजा जायेगा।

प्रधान- अलगू, गनेश, रामनारायण, भजन, अफजल खां बैंक से खेती के विकास के लिए ऋण लेना चाहते हैं। रामधन अक्सर तहसील जाते हैं यह सब के लिए प्रार्थना पत्र का फार्म ले आयेंगे, सब लोग फार्म की कीमत इनके पास जमा कर दें। अगले मंगल को लेखापाल भी गांव आयेंगे। उनसे खसरा खतौनी की नक्ल ले ली जायेगी। शुक्लाजी द्वारा ऋण प्राप्त करने के सम्बन्ध में की गई जानकारी के लिए मैं सभी की ओर से उन्हें धन्यवाद देता हूं।

(अलगू अपने खेत की मेड़ पर बैठा है। ट्यूबवेल और ट्रैक्टर के चलने की आवाज खेतों में सुनाई पड़ रही है। अलगू ताल में ताल मिलाकर अपने उज्ज्वल भविष्य पर कुछ गुनगुनाता है...)

अलगू- (स्वतः) वाह! अब मेरे दुखों के पहाड़ खत्म होगा और मेरे परिवार में, मेरे छोटे से संसार में, सुख की सरिता प्रवाहित होगी।

(शाम का समय। सूरज डूबने में अभी कुछ देर है। अलगू बाजार से लौटा है। उसकी जेब में रुपये हैं। पिछौरे में कुछ सामान बंधा है)

अलगू- रधिया ओ-रधिया-अरे कहां चली गई (रधिया अपनी धोती के एक पल्ले से हाथ पोछती हुई आयी)

अलगू- हाथ पकड़ते हुए देख तेरे लिए क्या लाया हूं?

रधिया- जरा देखूं तो।

अलगू- ऊं हूँ ऐसे नहीं।

रधिया- फिर कैसे?

अलगू- पहले...

रधिया- गजब करते हो जरा उम्र का तो ख्याल करो।

अलगू- 4 वर्ष भी शादी को नहीं हुए और उम्र का ख्याल अरे अब तो हमारी मुट्ठी में दाम है हमें किस बात की चिन्ता, अब हमारे सामने एक उज्ज्वल राह है, भविष्य है, ठीक तेरी टिकली की तरह चमकती हुई चमचम तकदीर और रधिया इस राह पर डालने में तेरा ही बड़ा हाथ रहा, तू घर की लक्ष्मी है, लक्ष्मी। यदि तू रामधन के कुंए से पानी लेने की और नेक सलाह देने की बात न करती तो यह भूमि विकास बैंक की राह मेरे दिमाग में कभी न आती। मैं तो इन ऐंकों बैंकों को भी एक अजीब माया जाल समझ रहा था।

रधिया- अच्छा पिछौरा खोलो क्या लाये हो, (पिछौरा अपने हाथ में लेकर गांठ खोलती हुई) अरे झुमकें, लहंगा, चुनरी अरे-रे-रे इतनी सारी चीजें वाह रे भगवान...

(अलगू अपनी जेब में से नोटों की नई गड्डी निकालता है और देते हुए रधिया को बधाई देता है)

रधिया- सच इतने लाभ को तो मैंने स्वपन में भी नहीं सोचा था। सच पूछो तो हमें बधाई नहीं, बधाई तो भूमि विकास बैंक को देनी चाहिए जिसने हमारी बंजर भूमि को सुहागिन बना, दुखों का पहाड़ तोड़ सुख की सरिता बहाई। धन्य है बैंक का, धन्य है इस बैंक का।

अलगू- अब तो हमारी भूमि ही क्या सुहागिन बनी कि मैं भी अब बाप बनने वाला हूँ। और उसका नाम सहयोगी या सहदेवी रखूंगा रधिया। आज हमारे दुखों के पहाड़ खत्म हो गये और सुख और चैन की सांस मिली।

सम्पादक, सहकारिता मासिक एवं/साप्ताहिक
लखनऊ- उत्तर प्रदेश

मछली पालन और हमारे भूमिहीन कृषक

डा. निर्मलकान्त ठाकुर

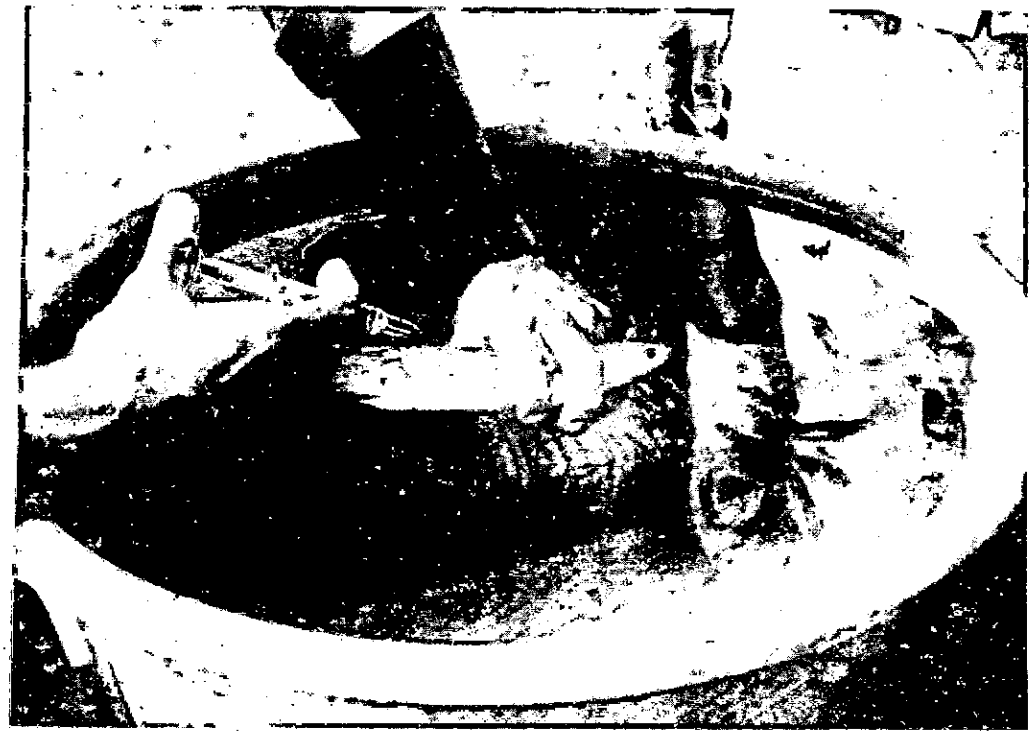

भूमिहीन किसान मछली पकड़ते हुए

आम तौर पर हमारे भूमिहीन कृषकों के पास और कोई चारा नहीं होता सिवाय इसके कि वे मजदूरों की तरह दूसरों के खेत-खलिहानों में अपना खून-पसीना एक करें और अपने लिए दो वक्त की रोटी जुटाएं। बड़ी दयनीय दशा है इन भूमिहीन कृषकों की। अल्पसंख्यक होते ये तो और बात होती। समुचित रोजगार का कोई सुपास निकाल लिया जाता। गांवों में ऐसे भूमिहीन कृषकों का पर्याप्त बड़ा समुदाय है। इन कृषकों के लिए मजदूरी की कोई स्थायी व्यवस्था हो ऐसी बात भी नहीं। खेती-बारी का जब तक काम चला तब तक मजदूरी मिली वरना बेकार। इसके अलावा खेतीबारी में अब यंत्रीकरण का भी दखल हो गया है। पहले जहां खेतों में जोतने के लिए हल चलाए जाते थे वहां ट्रैक्टरों से काम लिया जा रहा है। उसी प्रकार बुवाई, कटाई, अनाज की तैयारी आदि कार्यों में भी मनुष्य की जगह अब मशीनें स्थान ले रही हैं। ऐसी स्थिति में हमारे भूमिहीन कृषक बन्धु कहां जाएं, क्या करें? यही कारण है, आज गांव का गांव खाली हुआ जा रहा है। रोजगार की तलाश में वे दर-दर मारे फिर रहे हैं।

भारतवर्ष एक कृषि प्रधान देश है। कृषि इस देश की आर्थिक प्रगति का आधार है। इस देश की लगभग दो-तिहाई आबादी कृषि पर आश्रित है। व्यवसाय के इतने बड़े साधन का उत्तमोत्तम उपयोग तो होना ही चाहिए। वक्त आ गया है। कि हम गांवों को उजड़ने से बचाएं। विज्ञान और प्रौद्योगिकी के माध्यम से रोजगार के ऐसे अवसर प्रदान करें कि गांवों में कोई बेकार न रहे। ऐसी व्यवस्था की जाए जिससे उनका सही मार्ग-दर्शन हो और उन्हें गरीबी से मुक्ति मिले।

भूमिहीन कृषकों के लिए कई प्रकार के धंधे हैं जिन्हें जीविकोपार्जन का जरिया बनाया जा सकता है। इनमें से एक धंधा मछली पालन का भी है। हालांकि भूमिहीन कृषकों के संदर्भ में मछली पालन प्रौद्योगिकी की एहमियत

सहज ही बोधगम्य नहीं होती लेकिन इसका महत्व है इसमें दो राय नहीं। लोग सोचते हैं, भूमिहीन कृषकों की भला औकात ही क्या होती है। दो वक्त की रोटी तो जुटा पाते नहीं वे बिचारे तालाब कहां से लाएंगे। वस्तुतः यही बात एक प्रश्न-चिह्न के रूप में कृषि विज्ञान केन्द्र, कौशल्यागंगा के कार्यकर्त्ताओं के समक्ष उपस्थित हुई थी जब आज से कोई एक दशक पूर्व केन्द्र के स्थापित होते ही उन्होंने मछली पालन की प्रौद्योगिकी को जिले के गांवों में जन-जन तक पहुंचाने का आह्वान किया था।

विडम्बना

मछली पालन प्रौद्योगिकी के साथ सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि इसे हमारे देश में निकृष्ट धंधा समझा जाता है। इस कार्य में मुख्यतः पिछड़े वर्ग के लोग ही लगते हैं। कर्त्ता के रूप में उनकी पहचान तो होती है लेकिन गरीबी की वजह से धरता अर्थात तालाब का मालिक कोई और होता है। तालाब जिनके अधीन होता है वे प्रायः ऊंचे लोग होते हैं। तालाब रखने का बस एक शौक होता है इन्हें। तालाब का व्यवहार ये मुख्यतः नहाने-धोने, पूजा-पाठ अथवा सिंचाई के लिए करते हैं। मछली पालन तो बस एक उपोत्पादन प्राप्त करने के दृष्टिकोण से ही करते हैं ये। न तालाब की सफाई की, न उसको तैयार किया। बस कुछ बीज ला छोड़े और समझ लिया मछली पालन हो गया। उसके बाद तालाब में मछली मरी या जीवित रही, इस बात से उन्हें कोई सरोकार नहीं। बाज-औकात दो-एक मछलियां खाने को मिल गईं बस उसी से खुश हो लिए।

मछली पालन इतना आसान काम नहीं। इसके लिए मेहनत करनी पड़ती है। खुद नहीं कर सकते तो तालाब को किराए पर देना होगा और सच्चाई यह है कि तालाब को किराए पर लगाना लोग पसन्द नहीं करते। सीधी सी बात है, वे सोचते हैं इस चक्कर में कहीं तालाब से उनका अधिकार न छिन जाए। गांवों में आज कितने ही ऐसे तालाब हैं जो मछली पालन के दृष्टिकोण से अव्यवहृत पड़े हैं।

विकल्प

प्रारंभिक चरण में केन्द्र द्वारा पुरी जिले के गांवों में जो सर्वे किए गए उससे यह जानकारी मिली कि प्रायः प्रत्येक गांव में कुछ एक ऐसे तालाब हैं जो ग्राम पंचायत के अधीन हैं। समुचित देख-रेख के अभाव में इस तरह के तालाब

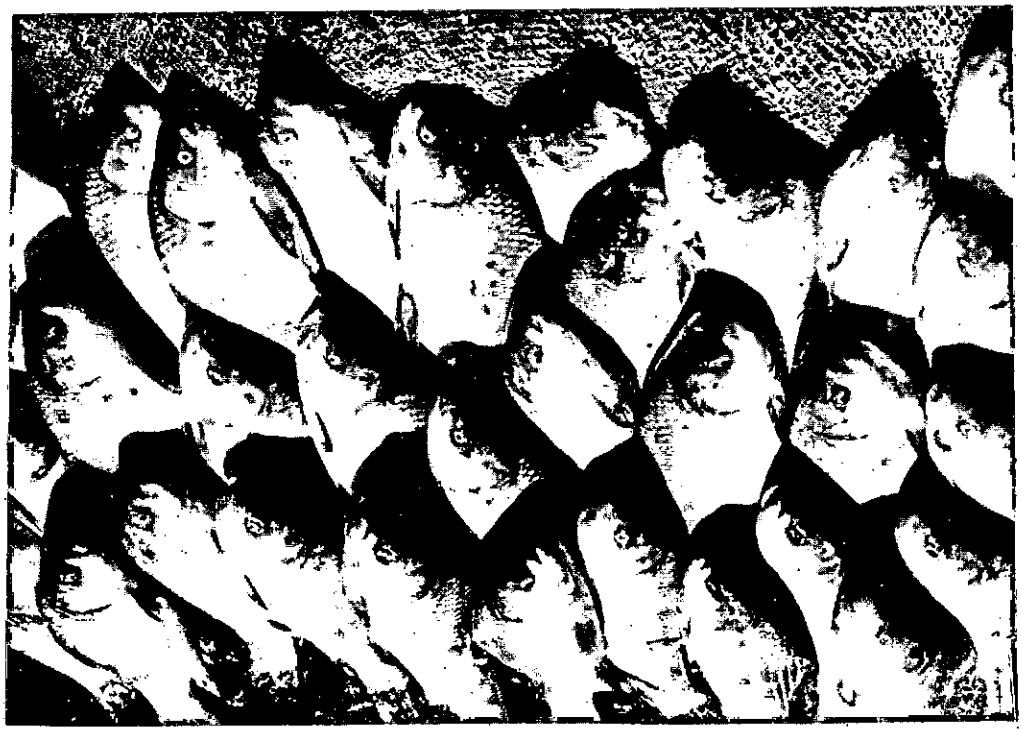

भण्डार कक्ष में रखी गई मछलीयां

प्रायः बेकार पड़े हैं। तालाबों में समुचित ढंग से मछली पालन करने की बात पर किसी का ध्यान ही नहीं जाता। सार्वजनिक सम्पत्ति के लिए व्यक्तिगत रूप से फिक्र भला कोई क्यों करें?

सर्वे के दौरान इस बात की भी जानकारी मिली कि पंचायती तालाबों को पट्टे पर लेने का विधान है। व्यक्तिगत रूप अथवा कई लोग इकट्ठे मिल कर इन तालाबों के पट्टाधारी बन सकते हैं। इसी विधान का आधार लिया गया और भूमिहीन कृषकों को लाभान्वित करने की योजना बनाई गई। उन्हें इस बात के लिए प्रेरित किया गया कि वे एक जुट हो कर पंचायती तालाबों का पट्टा लें और प्रभु का नाम ले कर मछली पालन के कार्य में लगें। मछली पालन के विभिन्न पहलुओं से उन्हें भिज्ञ कराया गया तथा इसके आय-व्यय की विस्तृत जानकारी दी गई। बात उनकी समझ में आई और वे तदर्थ राजी हो गए।

इस क्रम में पुरी जिले के कई गांवों में पंचायती तालाबों का जीर्णोद्धार हुआ। अनेक तालाब ऐसे थे जिनका चप्पा-चप्पा जलकुंभी तथा अन्य जलीय खरपतवारों से पूर्णतया रुंधा था। कृषकों ने मिल कर श्रमदान किया और तालाब साफ कर लिए गए। इन कृषक बन्धुओं के लिए केन्द्र द्वारा प्रशिक्षण की व्यवस्था की गई। "करो और सीखो" के सिद्धान्त पर उन्हें मछली पालन प्रौद्योगिकी की बारीकियों से अवगत कराया गया। उनके लिए मत्स्य-बीज की व्यवस्था कर दी गई और इस प्रकार काम शुरू हो गया। आठ-दस महीने पश्चात इन तालाबों से मछलियों की पैदावार प्राप्त की गई। प्रदर्शन अत्यन्त सफल रहे। कृषक बन्धुओं की चेतना जागृत हुई। इस प्रौद्योगिकी के प्रति उनमें आत्मविश्वास उदित हुआ और वे पूर्णरूपेण इस व्यवसाय को समर्पित हो गए। मछली का उत्पादन जहां बस नाम मात्र हुआ करता था उन्हीं तालाबों से अब हमारे कृषक बन्धु औसतन 1800 किलोग्राम प्रति हैक्टेयर का उत्पादन प्राप्त कर रहे हैं। कृषकों के समन्वित प्रयास का सबसे बड़ा फायदा यह हुआ कि मज़दूर को मद में पैसे बिल्कुल ही नहीं खर्चने पड़े और सारा कार्यक्रम बड़ा ही मितव्ययी साबित हुआ।

कई एक गांवों में भूमिहीन कृषकों को मछलियों के बीज तैयार करने की प्रौद्योगिकी भी हस्तान्तरित की गई है। वर्षा ऋतु में खेत-खलिहानों, सड़कों-पगडंडियों के किनारे नीची जमीन पर नर्सरी तालाब की छोटी-मोटी इकाईयां बना कर वे मछली का जीरा तैयार करते हैं और इस प्रकार प्रति वर्ष उन्हें इस कार्य से अच्छा मुनाफा प्राप्त हो जाता है। हर जगह मछली के जीरे की बड़ी मांग है। उंगली भर लम्बाई की एक-एक मछली 50 पैसे से डेढ़-दो रुपये तक के दामों में आसानी से बिक जाती है।

बहुत से भूमिहीन कृषकों ने तालाब के भिन्डे पर बागवानी करने का भी बीड़ा उठाया है। यह प्रथा पुरी जिले के गांवों में इन दिनों खूब चल गई है। साग-सब्जी की उपज से कृषकों को अच्छा मुनाफा हो जाता है।

निष्कर्ष

मछली पालन की प्रौद्योगिकी भूमिहीन कृषकों के लिए रोजगार का एक सुन्दर विकल्प है। प्रसार कार्य में संलग्न संस्थाओं को चाहिए कि वे मछली पालन की प्रौद्योगिकी को जन-जन पहुंचाने के लिए कृतसंकल्प हों।

प्रशिक्षक पदाधिकारी
कृषि विज्ञान केन्द्र, कौशल्यागंगा
भुवनेश्वर -751002

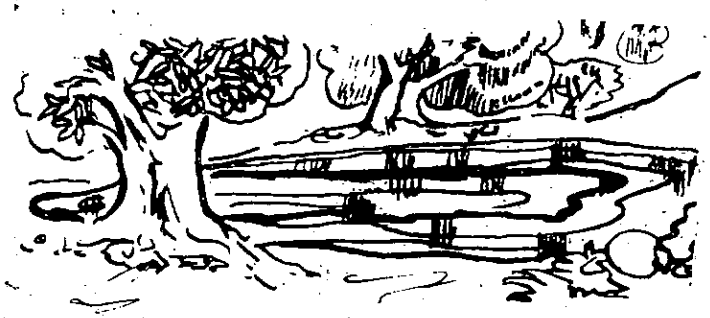

साम्प्रदायिक सद्भाव और जनसंचार माध्यम

वी. श्रीपति राव

इसमें कोई दो राय नहीं है कि साम्प्रदायिक सद्भाव और राष्ट्रीय एकता को बढ़ावा देने और इन मुद्दों के प्रति जागरूक जनमत जागृत करने में जनसंचार माध्यमों की कारगर भूमिका है। देशवासियों का भाग्य संवारने और उन्हें राष्ट्रीय एकता और साम्प्रदायिक सद्भाव जैसे मुद्दों के बारे में शिक्षित करने में जनसंचार माध्यमों का इस्तेमाल हमेशा कारगर और प्रभावशाली साबित हुआ है। ऐसे अनेक उदाहरण हैं जब इन माध्यमों का जरूरत से बहुत ज्यादा या बहुत कम इस्तेमाल किया गया है। अतः ऐसे मामलों में संतुलित दृष्टिकोण अपनाना और माध्यमों का सावधानीपूर्वक उपयोग करना बहुत आवश्यक है।

कुल मिलाकर हम शांतिप्रिय नागरिक हैं तथा अपने देश और अपने लोगों से हमें लगाव भी है। इसलिए यह कहना सरासर गलत है कि हममें राष्ट्रीय अखण्डता और एकता की भावना नहीं है या हम यह भावना खो चुके हैं। यह कहना भी गलत है कि एक राष्ट्र के रूप में हम इन मुद्दों पर अपने मान्य सिद्धान्तों से भटकते जा रहे हैं। जिस दिन ऐसा होने लगेगा वो दिन इस राष्ट्र के लिए बहुत दुखद होगा। सौभाग्यवश आज हमारी स्थिति इससे कहीं बेहतर है। आज लोगों में एकता और अखण्डता के प्रति आदर की भावना है।

देश के ज्यादातर लोग साम्प्रदायिक या अन्य प्रकार की किसी हिंसक गतिविधि में शामिल नहीं होते। हमारे गांव, जहां 75 प्रतिशत से अधिक लोग रहते हैं, इस समस्या से मुक्त हैं। इसी तरह हमारे कई शहरों और शहरी क्षेत्रों में भी यह समस्या न के बराबर है। लोग स्वस्थ और सद्भावपूर्ण जीवन जीते हैं। केवल कुछ गिने-चुने हिस्सों में और यदा-कदा ही लोग हिंसा जैसी अवांछनीय गतिविधियों में हिस्सा लेते हैं। दुर्भाग्यवश आजाद प्रेस और नियंत्रित संचार माध्यमों दोनों ही से इन घटनाओं का अत्यधिक प्रचार हो जाता है जिससे आम आदमी के मन में असुरक्षा की भावना घर कर जाती है।

उत्पत्ति

क्या किसी ने इन घटनाओं का विस्तार से गहन अध्ययन किया है? इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता है कि अक्सर गड़बड़ी का कारण कुछ गम्भीर सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियां और समस्याएं होती हैं न कि समुदायों की भिन्नता, जैसा कि अधिकांशतः प्रचार किया जाता है और निहित स्वार्थी वर्ग उससे लाभ उठाते हैं। गड़बड़ी की शुरूआत गरीबी, बेरोजगारी और आजीविका से जुड़े अन्य मुद्दों से होती है। स्थानीय बुद्धिजीवी और सरकार इन मसलों पर विशेष ध्यान नहीं देते और स्थिति को समझ नहीं पाते। स्थिति का वर्णन सुविधानुसार किया जाने लगता है। जो समस्या या झगड़ा मूलतः दो व्यक्तियों या दो परिवारों के बीच था वो अब दो समुदायों के बीच हो जाता है।

समाज का शिक्षण

भारतीय समाज की सबसे बड़ी समस्या है शिक्षा का अभाव। लोगों को पूरी तरह शिक्षित किया जाना चाहिए।

देश की अशिक्षित जनता निहित स्वार्थों के नारों और हथकण्डों की शिकार होती जा रही है। कुछ स्वार्थी तत्व अपना हित साधने के लिए धर्म को हथियार के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं। धार्मिक रीति-रिवाजों की आड़ में वे दूसरे धर्मों के प्रति घृणा और विद्वेष के बीज बो रहे हैं। वे लोग हमारे समाज के बहुमुखी स्वरूप को नष्ट कर रहे हैं और इस प्रकार विविधता में एकता के हमारे आदर्श को क्षीण करते जा रहे हैं। ऐसा करने वालों को हमें रोकना होगा और यह तभी सम्भव है जब लोगों को सही ढंग से शिक्षित किया जाए और उनमें राष्ट्रीयता की भावना विकसित की जाए। इस दिशा में जनसंचार माध्यमों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

धर्म के प्रति सम्मान

किसी व्यक्ति के लिए धर्म बहुत पवित्र भावना है। यह उसकी दिव्य आस्था का अंग है। हर व्यक्ति अपने धर्म का सम्मान करता है और किसी की भी भावनाओं, विशेषकर धार्मिक भावनाओं,को ठेस पहुंचाना उचित नहीं है। हमें यह भी समझना चाहिए कि धर्म अक्सर सामाजिक सद्भाव में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अतः हर व्यक्ति की धार्मिक भावनाओं का सम्मान करना ही श्रेयस्कर होगा। लोकतंत्र या धर्मनिरपेक्षता के नाम पर हमें यह अधिकार नहीं है कि हम धर्म के प्रति किसी नागरिक की आस्था या भावना को ठेस पहुंचाएं।

धर्म और सरकार

धर्म और सरकार हमारे समाज के दो अलग-अलग क्षेत्र हैं। दोनों एक-दूसरे से बिल्कुल भिन्न हैं। एक किसी व्यक्ति की व्यक्तिगत आस्था है तो दूसरा सम्पूर्णराष्ट्र की आशा। धर्म एक निजी मामला है और सरकार सबकी होती है। सरकार पर हर समुदाय और जाति का पूरा हक होता है और उसे इसी भावना अर्थात सबके प्रति अपनत्व की भावना का परिचय देना चाहिए। सरकार के इस पहलू की झलक लोगों के साथ उसके व्यवहार और काम से मिलनी चाहिए।

हमारे पूर्वज और स्वतंत्र आधुनिक भारत के निर्माता इस पहलू का महत्व समझते थे और उन्होंने ऐसे सभी पुनीत विचारों को हमारे संविधान में उचित स्थान दिया है। हमारा संविधान जनता और सरकार के विचारों, इच्छाओं और आकांक्षाओं का सच्चा प्रतीक है।

हमारे कितने नागरिक इस सच्चाई से परिचित हैं? उनमें से कितनों ने भारतीय संविधान की भावना को समझा है? कितने लोग जानते हैं कि हमारे संविधान और पड़ोसी देशों के संविधानों में क्या मूलभूत अन्तर है? कितने लोग जानते हैं कि हमारे संविधान में सभी धर्मों के विकास के लिए कितनी स्वतंत्रता और उनके प्रति कितने सम्मान की व्यवस्था है? इन कटु सत्यों और तथ्यों का ज्ञान जनसाधारण को साहस के साथ कराया जाना चाहिए। टालमटोल करने से काम नहीं चलेगा। इस दिशा में जनसंचार माध्यमों की भूमिका अहम है। अब तक इन माध्यमों ने इस दिशा में जो कुछ भी किया है वो बहुत कम है। अब सभी जनसंचार माध्यम जैसे अखबार, रेडियो, टी.वी., रंगमंच और अन्य प्रकाशित माध्यम, राष्ट्रीय महत्व के महत्वपूर्ण मसलों के बारे में जनता को शिक्षित करने के लिए विशाल अभियान तो छेड़ ही सकते हैं।

हम अपनी आजादी का 40 साल का सफर तय कर चुके हैं। अपने देश के बारे में कुछ बातें मालूम की हैं। देश की कमियों-कमजोरियों और गुणों से हम परिचित हैं। अपनी कमजोरियों से हमें हताश नहीं होना है। कमजोरियां मानव स्वभाव की अंग हैं और हर राष्ट्र, हर समाज में होती हैं। जरूरत उन्हें सही सन्दर्भ में समझने की है। अब समय आ गया है कि हम इन मुद्दों और घटनाओं का साफ विश्लेषण करें और इन समस्याओं के बुनियादी कारणों को समझें।

यदि झगड़े की जड़ दो समुदायों के बीच अविश्वास है तो उसे दूर करने और दोनों के बीच फिर से विश्वास का सेतु कायम करने के प्रयास किए जाने चाहिए। यदि इसकी जड़ विषमता और असमान व्यवहार है तो विषमताएं मिटाने और कष्ट दूर करने पर ध्यान दिया जाना चाहिए। यदि कारण आर्थिक-सामाजिक है तो प्रभावित समुदाय का आर्थिक-सामाजिक स्तर ऊंचा उठाने के प्रयास किए जाने चाहिए और यदि समस्या राजनीतिक है तो उससे राजनीतिक ढंग से निपटना चाहिए।

आजादी के तुरन्त बाद की घटनाओं से निश्चय ही हम सभी को बहुत कष्ट और चिन्ता हुई थी। दुनिया में और हमारे पड़ोसी देशों में जो माहौल बना था उसका हमारे लोगों खासकर सीमावर्ती क्षेत्रों की जनता पर काफी खराब असर पड़ा था। देश के मजबूत नेतृत्व ने इस समस्या को कारगर

ढंग से निपटाया और हमारे नेताओं ने देश और जनता को सही रास्ता दिखाया।

जनसंचार माध्यमों की भूमिका

इन सारी बातों की जानकारी जनता तक विस्तार से पहुंचायी जानी चाहिए। ऐसे समय में हमारे जनसंचार माध्यम द्वारा लोगों को समाचार बताने में सावधानी बरतनी चाहिये। अखबार और सरकारी नियंत्रण वाले माध्यम को विशेष भूमिका निभानी चाहिये। जानकारी ऐसी होनी चाहिये जिससे लोग अफवाहों से दूर रह सकें। यह अफवाहें और गप्प समाज में बहुत अवांछनीय प्रतिक्रिया उत्पन्न करती हैं। सरकारी जनसंचार माध्यम और स्वतंत्र प्रेस इन अफवाहों और गप्पों के खतरों और इनसे हो रहे नुकसान को समझते हैं। इसलिए हमें विभिन्न माध्यमों के जरिए उन्हें सही सूचना देकर देखना चाहिए कि वास्तविक प्रतिक्रिया क्या होती है। हमें यह प्रयोग करके देखना चाहिए। अतीत में महात्मा गांधी ने यह प्रयोग सफलतापूर्वक किया है। बिहार में चौरीचौरा काण्ड के तत्काल बाद उन्होंने ब्रिटिश राज के विरुद्ध सत्याग्रह आन्दोलन वापस ले लिया। उन्होंने लोगों को साफ बता दिया कि उनकी लड़ाई ब्रिटिश राज से है, ब्रिटिश जनता से नहीं। देश में कुछ समय तक हो-हल्ला हुआ। तरह-तरह के विचार सामने आए उनमें से कुछ लोग गांधीजी के विरूद्ध हो गए। लेकिन अंत में विजय गांधीजी की हुई। लोगों ने उन्हें और उनकी ईमानदार नीतियों को सही रूप में समझा। सत्य की इसी लहर की आज जरूरत है।

आज लोग एक समुदाय को दूसरे के विरुद्ध, एक जाति को दूसरी जाति के विरुद्ध भड़काने और वैमनस्य पैदा करने से नहीं डरते क्योंकि उन्हें मालूम है कि उनका कुछ नहीं बिगड़ेगा और अगर कुछ हुआ भी तो वे जानते हैं कि वे किसी बड़े व्यक्ति की शरण लेकर साफ बच सकते हैं। उनकी इन कार्रवाहियों से नुकसान राष्ट्र और उसकी जनता को होता है। मजबूत सरकार सब तरह की गड़बड़ियों पर अंकुश लगा सकती है।

जनसंचार माध्यमों को ऐसी स्थिति पर ध्यान देना चाहिए। यदि ये माध्यम स्थिति से निष्पक्ष, कारगर और दृढ़ रूप से निपटें तो उनका प्रभाव शत-प्रतिशत हो सकता है। लेकिन यदि वे अधकचरी और अप्रासांगिक सूचनाएं देंगे तो हंसी के पात्र बनेंगे और विश्वसनीयता खो देंगे। केवल सच्चाई और तथ्यों से ही मजबूत राष्ट्र के लिए कारगर आधार का निर्माण हो सकता है। हमें जनसंचार माध्यमों का उपयोग संकटों से मुक्त मजबूत राष्ट्र के विकास के लिए करना चाहिए।

जनसंचार माध्यमों की पहुंच को कम नहीं समझा जाना चाहिए। 1927 में जब आकाशवाणी के प्रसारण शुरू हुए थे तो उसके सिर्फ 6 प्रसारण केन्द्र थे जो केवल 11 प्रतिशत जनसंख्या तक कार्यक्रम पहुंचाते थे। किन्तु आज स्थिति बदल गई है। आज 93 रेडियो स्टेशन और 172 ट्रांसमीटर हैं जिनकी पहुंच देश की 89 प्रतिशत जनसंख्या तक है। दूरदर्शन ने अगस्त 1975 में "साइट" प्रयोग के रूप में शुरूआत की थी लेकिन 1982 में बहुउद्देशीय उपग्रह छोड़े जाने के साथ ही उसका स्वरूप बदल गया। आज हर शहर, बड़े कस्बे और अधिसंख्य गांवों में दूरदर्शन कार्यक्रम देखे जाते हैं। यही हाल पत्र-पत्रिकाओं का है। 1947 में देश में 330 दैनिक पत्र थे। 1985 तक कुल संख्या 22,648 हो गई जिसमें से 1802 दैनिक और बाकी 20,846 साप्ताहिक और पाक्षिक आदि थे। इनमें 322 केन्द्र और 292 राज्य सरकार के प्रकाशन हैं। यही स्थिति फिल्म निर्माण और सिनेमाघरों की है। 1947 में 207 फिल्में बनी थीं जबकि 1985 में 912 फिल्में बनीं। अब तक फिल्म उद्योग ने 17,000 फिल्में बनाई हैं।

अतः अब जनसंचार माध्यमों की क्षमता और पहुंच पर शक की कोई गुंजाइश नहीं है। इस हथियार का इस्तेमाल सावधानीपूर्वक सही ढंग से राष्ट्र और जनता के कल्याण के लिए किया जाना चाहिए। राष्ट्र के विकास के लिए इसका जितना उपयोग किया जाएगा इसकी शक्ति में उतनी ही वृद्धि होगी।

अनुवाद: अखिल मित्तल

आदिवासी महिलाएं

शशि प्रभा

भारत में अनेक जनजातियों का वास है। अंडमान-निकोबार की जाख तथा तमिलनाडु की टोडा आदि ऐसी जनजातियां है, जिनकी जनसंख्या उत्तरोत्तर घटती जा रही है किन्तु ऐसी भी हैं जिनकी 200 से अधिक उपजातियां तक देखने में आती हैं। एक साधारण पाठक के लिए नगा केवल एक जनजाति है किन्तु एक नृ-वैज्ञानिक उनमें लगभग 200 जनजातियों की गणना करता है। इस प्रकार संथाल, भील, गोंड, उरांव, मुड़िया, बैगा, खस, गद्दी आदि जनजातियों में रीति रिवाज भी विविधता लिए होते हैं। हिन्दू समाज की जाति प्रथा की भांति अनेक जनजातियां भी जाति प्रथा से जकड़ी हुई हैं। इन आदिवासियों की सामाजिक तथा आर्थिक एवं शैक्षणिक स्थिति प्रायः एक जैसी ही है। जंगल, पहाड़ में विचरण करने वाला यह आदिवासी समाज आज भी स्त्रियों को समान दर्जा देने के हक में नहीं है। ऐसे अनेक समाज हैं जहां पर आदिवासी स्त्रियों को रात-दिन परिश्रम करके परिवार का पालन पोषण करना पड़ता है। वे खेत और घर दोनों में समान रूप से कार्य में हाथ बंटाती हैं।

महिलाओं की हीन स्थिति की दृष्टि से जब हम इन जनजातियों पर दृष्टिपात करते हैं तो हमें हिमाचल प्रदेश का हांगरंग प्रदेश अचानक अपनी ओर खींच लेता है। जनसंख्या की दृष्टि से यद्यपि यह क्षेत्र बहुत छोटा है किन्तु भारतीय सीमान्त का यह सबसे दुर्बल एवं राजनैतिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण भाग है। यह क्षेत्र पश्चिमी तिब्बत के रुनछुंग परगना से मिला है। यहां बौद्ध धर्म की प्रधानता है। कहते हैं कि बहुपति प्रथा का जन्म पांडव संस्कृति की देन है। मैंने हिमालय की बहुपति प्रथा वाली जनजातियों का जब सर्वेक्षण किया तो मुझे इस प्रथा के संबंध में यत्र तत्र पांडवों की कथाएं सुनने को मिली थीं। हां यह बात और है कि नीलगिरी के आदिवासी टोडा जनजाति की बहुपति प्रथा किसी भी ऐसे कथानक की देन नहीं है।

हांगरंग प्रदेश की बहुपति प्रथा सबसे अधिक दुष्परिणामों को लिए हुए है। इस में प्रायः सारे कार्य स्त्रियां ही करती हैं। हांगरंग की आदिवासी स्त्री भोर में बहुत जल्दी उठकर अपने पशुओं को चारा खिलाती है। उसका पति खेत में जाने के लिए जब बैलों के कन्धे पर हल रखता है तो वह अपने कन्धे पर एक कुल्हाड़ी लेकर उसके पीछे-पीछे हो लेती है। अपने बच्चों को कड़कड़ाती ठंड में अकेला छोड़कर जंगल की ओर जाता हुआ यह युगल ऐसा लगता है जैसे भारत का समस्त श्रम इन दो व्यक्तियों में आकर बस गया हो। प्रकृति द्वारा सुसज्जित इन रमणीक घाटियों में जब आदिवासी अपना हल चलाता है तो उसकी औरत किसी पेड़ से अपने पशुओं के लिए पत्तियां काटती होती है या ईंधन के लिए लकड़ियां तोड़ती होती है।

खेत में बुआरि, गुड़ाई और कटाई आदि कार्य भी स्त्री को करने पड़ते हैं। स्त्री का आर्थिक स्थिति में महत्वपूर्ण योगदान होने के कारण ये लोग अपनी लड़कियों को "जोमो" बनने की प्रेरणा देते हैं। जोमो वे अविवाहित लड़कियां होती हैं जो सारा जीवन मां-बाप अथवा भाई के साथ ब्रह्मचर्य का कठोर पालन करते हुए बिता देती हैं। ये जोमो लड़की लामाओं से दीक्षा लेकर अपना सिर मुंडा लेती हैं और गुरू-दीक्षा के चिन्ह के रूप में माला पहन लेती हैं। ऐसा भी देखने में आया कि कभी-कभी जोमा महिला गृहस्थ धर्म में प्रविष्ट हो गई है।

इस क्षेत्र में बहुत से ऐसे गांव भी मिल जायेंगे जहां महिलाओं को पांच तक सही गिनती भी नहीं आती। एक बार एक स्त्री से पूछा गया कि तुम्हारे कितने लड़के हैं वह बोली-दो। उसके पास एक जोमो बैठी हुई थी उसने कहा जरा फिर गिन ले। वह बोली-तीन। जोमो महिला ने फिर इशारा किया कि शायद अब भी गलत है। उसने मनके उठाकर गिनती शुरू की लेकिन अपने पांच लड़कों को चार तक गिनकर ही चुप हो गई।

यह स्थिति है उस प्रदेश की जहां स्त्री-पुरुष सही ढंग

से हिसाब तक नहीं लगा सकते और इसीलिए जमींदार तथा अन्य लोग उनका ऋण कभी उतरने नहीं देते। एक और आश्चर्यजनक घटना देखने में आयी। एक जमींदार ने आठ महीने तक अपनी गाय का दूध डटकर पिया। उसने हांगरंग के एक आदिवासी को वह गाय बटाई पर दे दी। शर्त यह थी कि आदिवासी दूध पीता रहेगा और इसके बदले में साल में बारह सेर मक्खन दे देगा। लेकिन उस गरीब को पांच से आगे गिनती नहीं आती थी इसलिए उस पर मक्खन का ऋण इतना बढ़ गया कि तीन चार साल में उस पर चौरासी सेर मक्खन का ऋण हो गया। बेचारा आदिवासी स्वयं ही ऋणी नहीं रहा बल्कि उसकी पीढ़ियों तक को ऋण उतारना पड़ा।

कितनी आदिवासी जोमो आज भी अपना घर बसाने का स्वप्न देखती हैं लेकिन उनके स्वयं अपने भाई, माता-पिता ही उनके शत्रु बन गये हैं जो उनसे दिन भर खेत में काम कराते हैं, पशु चरवाते हैं और फिर घर का भी पूरा काम लेते हैं।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 23(1) में लिखा है कि मानव विक्रय, स्त्रियों या बच्चों को बेचना अथवा खरीदना, बेगार आदि निषिद्ध है और इस नियम का उल्लंघन करने का अर्थ दंडनीय अपराध है। किन्तु किन्नर प्रदेश के बहुत से पिछड़े इलाकों में आज भी कहीं-कहीं ऐसी प्रथा देखने को मिलती है। आदिवासियों की दुर्दशा से सारा देश परिचित है। प्रकृति के क्रूर अट्टहास में एक ओर तो प्राकृतिक प्रकोप, पहाड़ों के हटने का भय, बर्फीला वातावरण, प्रतिकूल भौगोलिक परिस्थितियां और दूसरी ओर रूढ़ियों से जकड़ा हुआ यह आदिवासी किन्नर। लेखिका ने जब अपने एक किन्नर जनजाति के मित्र से पूछा कि तुम लोग स्त्रियों से इतना काम क्यों लेते हो और औरतों को गाय भैंसों की तरह क्यों बेचते हो तो उसने कहा कि यदि ऐसा न किया जाये तो क्या मैदान के लोग उनका पेट भरने पहुंच जायेंगे? आजकल सारी वस्तुयें महंगी हो गई हैं- यहां तक कि एक छोटा सा बकरी का बच्चा भी पचास रुपये से कम नहीं आता।

किन्नर प्रदेश की स्त्री को भी हांगरंग की आदिवासी महिलाओं की भांति घर से लेकर खेत तक के सारे काम करने पड़ते हैं। वह रात-रात भर जागकर अपने खेत में पानी देती है, हल चलाती है और कठिन से कठिन श्रम करने में पीछे नहीं रहती। दूसरी ओर पुरुष को हुक्का पीने से फुरसत नहीं। उसे इस बात की शायद फिक्र नहीं रहती कि उसकी पत्नी तड़के उठकर खेत में काम करने पहुंच गई है और एक दिन पूर्व उसने पूरी रात खेत में पानी दिया था। यह तो स्थिति है इन पहाड़ी औरतों के श्रम की। दूसरी ओर उनकी प्रसूति के समय यदि दृश्य देखा जाये तो और भी हृदय विदारक होता है। मैंने जब आदिवासी गद्दी महिलाओं को पहाड़ की खड़ी चढ़ाई पार करते देखा और उन्हीं के बीच एक नव प्रसूता को अपने आठ दिन के बच्चे को गोदी में लेकर कठिन पगडंडियों को पार करते देखा तो मैं हतप्रभ रह गई। जो महिलायें साल के छः महीने प्रवास में बिताती हैं उनके लिए न तो कोई दाई ही मयस्सर होती है और न परिचारिका। बेचारी आदिवासी गुज्जर अथवा गद्दी महिला को स्वयं ही दाई बनना पड़ता है और स्वयं प्रसूता भी। इसी अभिशापित जीवन के कारण पहाड़ की महिला शायद कह उठती हैं-

औक्खां पहाणां राजीणां अर्थात पहाड़ों का जीवन कठिन होता है।

पहाड़ की इन परम्पराओं को छोड़कर हम राजस्थान की आदिम जातियों की ओर प्रयाण करते हैं तो हमारी दृष्टि वहां की भील नारी पर पड़ती है। भील समाज यद्यपि एक पति प्रथा का अनुयायी है किन्तु यहां भी विवाह को परिवार के आर्थिक लाभ का रूप दिया जाता है। जिसके अनुसार पति के पिता को वधू की कीमत चुकानी पड़ती है और इस प्रकार यह नारी भी क्रीत पत्नी के रूप में परिवार के भरण-पोषण का उत्तरदायित्व संभालती है। भील महिला बचपन से ही जंगल से लकड़ी लेकर बाजार में बेचना, मवेशी चराना तथा घर के अन्य कार्यों में योगदान करना शुरू कर देती है। विवाह के उपरान्त उसका जीवन कठिन से कठिनतर बनता जाता है। उसे सूर्योदय से पूर्व चक्की चलानी पड़ती है, सुबह का नाश्ता तब तक तैयार नहीं हो सकता जब तक वह इतना आटा न पीस ले कि वह परिवार के सभी लोगों के लिये पर्याप्त हो। सुबह का नाश्ता बनाने के बाद वह घर के चौपायों को संभालती है। दोपहर में खेत पर भोजन ले जाती है और सांध्यकाल तक खेत में काम करती है। खेत से लौटने पर फिर सायंकाल का भोजन बनाना और सबको सुलाकर टूटी-फूटी शय्या पर लेट जाना, बस यही है उसका दैनिक कार्यक्रम।

भारत के पूर्वोत्तर प्रदेशों की गोद में विचरण करने वाली आदिवासी स्त्रियों को भी इस प्रकार के कठिन जीवन

को अपनाना पड़ता है। चाहे वह किसी अंगामी परिवार की नगा महिला हो या मिशमी, गारो या कोई और सभी समाज की स्त्रियां रूढ़िवादी परिधि में जकड़ी हुई हैं। इस स्थिति में न्यूनाधिक विभिन्नता हो सकती है। किन्तु कुल मिलाकर उनकी दशा दयनीय ही है। इनके मारिंग कबीले की एक विचित्र प्रथा यह है कि यहां अविवाहित लड़कियों को कानों में पीतल के छल्ले पहनने पड़ते हैं। ये महिलायें भी पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर परिवार के भरण पोषण में जी जान से जुटी रहती हैं।

मध्यप्रदेश की मुड़िया तथा बैगा महिलाओं की स्थिति को संतोषजनक नहीं कहा जा सकता। यहां की वन कन्याएं घोटुल के नाम पर कुछ क्षण भले ही प्रणय क्रीड़ा में व्यतीत कर लें किन्तु जंगल का दूभर जीवन इन भोली भाली आदिवासी बालाओं को कितने कष्ट देता है, यह केवल भुक्त भोगी ही समझ सकते हैं। भारत की सभी आदिवासी महिलाओं को जिन विपत्तियों का सामना करना पड़ता है, काश वे अवर्णनीय हों।

आशा दीप

यदुनन्दन प्रसाद शर्मा "यदुवर"

मग में दीपक ज्यों रखा हुआ,
जग का अंधियारा हरने को।
आशा की केवल एक किरण,
मन में उजियारा भरने को।।

मन को निराश मत होने दो,
मन को उदास मत रहने दो।
मन के काटो तुम सब बन्धन,
मन जो कहता है कहने दो।।

पग में आलसता मत लाना,
नहीं शरमाना डग भरने को।
इक इक नग की कीमत जानो,
रग रग के ज्ञानी बनने को।।

मन में आशा की जोत जगा,
कर्तव्य मार्ग पर डट जाओ।
मुस्काकर सबसे बात करो,
"यदुवर" चाहो सो पा जाओ।।

म.न. 2640, गली धर्मशाला,
शंकर गली, हिन्दू बाड़ा,
बाजार सीताराम, दिल्ली-6

मानसिक तनाव से दूर रहें

अभयकुमार जैन

'कल'। इस शब्द में कितनी संभावनाओं भरी पड़ी हैं। भले ही आज का दिन कितना निरुत्साही, निराशा के बादलों से घिरा, भय, बीमारी और मृत्यु की आशंका से पूर्ण ही क्यों न हो, किंतु सौभाग्य की संभावना का 'कल' तो सदैव रहेगा। इसलिए अच्छा हो, हम मृत्यु को सिर्फ आने वाले कल की तरह समझे जो असीम उत्साह और विश्वास से भरा हो।

—हेलन केलर

मनुष्य के अधिकांश दुख काल्पनिक और कल के अनिष्ट की आशंका के कारण पैदा होते हैं, किंतु कल किसने देखा? वह आपके लिये आशा का सुखद संदेश लेकर भी आ सकता है और निराशाजन्य वेदना लेकर भी। इसलिए कल की परवाह किये बिना जो लोग वस्तुतः वर्तमान में जीते हैं वही जीवन का सच्चा सुख भोग पाते हैं, जो गुजर गया वह समय चाहे कितना ही दुखद या सुखद क्यों न रहा हो उसकी अब कोई अहमियत नहीं रह गई और जो समय आने वाला है वह भविष्य के गर्भ में है। इसलिए मनुष्य के जीवन का वही क्षण जीवंत है जो वर्तमान है। आज जो पीड़ा या वेदना है वह कल भी रहे यह जरूरी नहीं। आज जो ऐश्वर्य है वह कल भी रहे यह जरूरी नहीं इसलिए कहा है, "इस संसार को त्याग भाव से भोगो, पीड़ा की अनुभूति मनुष्य को विचलित अवश्य करती है।"

मानसिक तनाव आधुनिक युग की देन है। मनुष्य का स्वभाव है कि वह सुख शांति, सफलता, सम्पन्नता चाहता है लेकिन आधुनिक युग में ये बातें ऐसी नहीं हैं कि जिन्हें सरलता से प्राप्त किया जा सकता है। आज व्यक्ति के सामने अनेकों तरह की समस्यायें हैं – व्यक्तिगत, पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक। इन समस्याओं के उचित समाधान न होने के परिणाम स्वरूप व्यक्ति तनावग्रस्त हो जाता है।

आज प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी प्रकार के तनाव से ग्रस्त है और कोई विरला व्यक्ति ही ऐसा होगा कि जो तनाव रहित होगा।

संसार के प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक व केलीफोर्निया युनिवर्सिटी लॉस एंजिल्स के प्रो. जेम्स सी. कोलमेन ने एक बार लिखा था कि सत्रहवीं शताब्दी को पुनर्जागरण काल कहा जाता है, अठारहवीं शताब्दी को बौद्धिक काल, उन्नीसवीं शताब्दी को प्रगति काल एवं बीसवीं शताब्दी को चिंताओं का काल कहा जाता है।

तनाव सिद्धांत के जनक महान वैज्ञानिक हेन्स सालाई के अनुसार मानसिक तनाव जीवन का हिस्सा बन गया है। आज ऐसे व्यक्ति की कल्पना करना असंभव है जो मानसिक तनाव का अनुभव नहीं करता है, केवल मृत व्यक्ति ही आज किसी तनाव से मुक्त रहता है।

यदि कोई व्यक्ति मानसिक तनाव का शिकार हो जाये तो उसे यह जानना चाहिये कि उसके पीछे क्या कारण है? क्या तनावों से छुटकारा मिल सकता है? क्या खुशहाली और उपयोगी जीवन व्यतीत किया जा सकता है?

मानसिक तनाव दूर करने के कुछ साधारण तौर तरीके

- जब आप किसी चीज से चिंतित हो, अपनी इस चिंता को दबाइये मत। अपनी चिंता उस समझदार या अपने आत्मीय व्यक्ति को बताइये जिस पर आप विश्वास करते हों। मसलन आपका घनिष्ठ मित्र, पत्नी, माता, पिता या चिकित्सक। उस व्यक्ति के सांत्वना के दो शब्द भी आपको मानसिक राहत पहुंचाने में सहायक हो सकते हैं।
- आपके पास कार्य की अधिकता हो तो उसे आवश्यकता व प्राथमिकता के आधार पर करते जायें। कार्य के बारे में चिंता न करें क्योंकि जितना समय आप चिंता में व्यतीत करेंगे उतने समय में आप यह महसूस करेंगे कि आपने कुछ कार्य संपन्न कर लिये हैं।
- हर कार्य को धीरे-धीरे पूरी तरह से और समझ-बूझ कर करें। इस तरह काम करने की आदत पड़ जाने पर कार्य करने में आनन्द की अनुभूति होती है। कार्यशक्ति में विश्वास उत्पन्न होता है।
- चिंता, क्रोध, ईर्ष्या, लोभ, डर एवं व्यर्थ की आशंकाओं से स्वयं को सदैव दूर रखें। ऐसा होता तो अच्छा होता, यह सोचना छोड़िये। हर समय अच्छे की आशा रखिये।

निराशायें, असफलतायें आपके लिये सीढ़ी बन कर आई थी जिन पर चढ़ कर आप सफलता और सुख के प्रांगण में प्रवेश करेंगे।

- जिंदगी का मजा तकलीफों से लड़कर विजय प्राप्त करने में है। इसलिए तकलीफों से घबराना नहीं चाहिये, बल्कि उनका स्वागत करना चाहिये। कठिनाइयों एवं बाधाओं का खिलाड़ी की तरह सामना करें। जीवन को खेल समझें और जीतने की आशा से खेलें।
- जब आप हमेशा अपने ही बारे में चिंता करने लग जायें तो कुछ समय इस स्थिति से उबरिये। दूसरों के लिए कुछ करने की कोशिश कीजिये। चिंता केवल अपना ध्यान रखने वाले पर सवारी करती है। जब आप हर समय दूसरों की भलाई का ध्यान रखेंगे तब आपको चिंता करके अपने कष्टों को बड़ा समझने का समय ही नहीं मिलेगा।
- तनाव से बचने के लिए सुगम उपाय यह है कि व्यक्ति को जिद्दी एवं दुराग्रही नहीं होना चाहिये। जिद्दी एवं दुराग्रही व्यक्ति व्यर्थ में ही मन को अशांत कर देता है। प्राकृतिक सौंदर्य का आनंद लें।
- मानसिक कार्य करने के पश्चात शारीरिक कार्य करने से मानसिक राहत मिलती है। कार्य करने के साथ-साथ बीच में साथियों से गप-शप करें। कुछ टहलें।
- संगीत विश्रांत मन की शांति प्रदान करता है, अतः अवकाश के क्षणों में संगीत सुनें। कभी-कभी फिल्में देखना, पत्रिकायें पढ़ना, माहौल बदलने के लिए यात्रा करना भी मानसिक तनाव को कम करता है।
- सोते समय बिल्कुल निश्चिंत रहें, न तो जो दिनभर कार्य हुआ है उसके बारे में विचार करें न ही आने वाले दिन की कार्य योजना बनाइये नहीं तो इसी उधेड़बुन में आपकी नींद उड़ जायेगी एवं आप व्यर्थ में ही परेशान रहेंगे।
- आज की व्यस्त भरी जिंदगी में अवकाश के क्षण नहीं निकल पाते हैं अतः हमें चाहिये कि अपने मनोरंजन के घंटे निश्चित कर लें इससे बड़ी राहत मिलती है। इसका शौक अवश्य रखना चाहिए ताकि उस समय कार्यालय का काम भुलाया जा सके।
- कई व्यक्तियों को प्रातःकाल कार्यालय निश्चित समय पर पहुंचना होता है, किंतु समय से न उठने के कारण व्यर्थ की भागमभाग रहती है। अतः निर्धारित समय से कुछ समय पूर्व उठ जाइये और शांति से अपना कार्य निवृत्त करते जाइये, आप यह महसूस करेंगे कि सिर्फ 15-20 या आधा घंटे कम नींद लेने से आप व्यर्थ की भागमभाग व दौड़-धूप से बच गये हैं।
- जीवन में अभाव होने से भी मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाता है। अभाव किसी भी वस्तु का हो सकता है, आप उस अभाव को दूर करने का अपने स्तर पर प्रयास करें, जब आप ज्यादा अभावग्रस्त हों तो उस समय उन व्यक्तियों के बारे में विचार करें, जिनके पास आपसे भी कम सुविधा व साधन हैं यह विचार आते ही आप स्वयं को बेहतर समझेंगे व मानसिक राहत महसूस करेंगे।
- परिश्रम करते समय श्रेष्ठतम की प्राप्ति की आशा सहज व स्वाभाविक है लेकिन इसके साथ ही यह भी आवश्यक है कि उस परिश्रम के प्रत्येक दुष्परिणामों के लिए तैयार रहें। अंग्रेजी में एक कहावत है 'ट्राई फार दि बेस्ट, बट बी रेडी फार दी वर्स्ट।' अर्थात सर्वश्रेष्ठ के लिये प्रयत्न कीजिये मगर निकृष्टतम के लिये तैयार रहिये। जीवन में निराशा और दुखों से बचना आवश्यक है। हेनरी फोर्ड से एक बार किसी ने पूछा "आपकी सफलता का रहस्य क्या है?" उनका उत्तर था 'सफलता का सबसे पहला रहस्य है हर परिस्थिति के लिए तैयार रहना।"

आशा है ये साधारण तौर-तरीके तनाव को दूर करने में सहायक सिद्ध होंगे।

तृप्ति-4, बंदा रोड
भवानी मंडी-326 502
राजस्थान

ग्रामीण अर्थव्यवस्था एवं क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक

कमलेश गुप्ता

भारतीय किसान जन्म लेते ही विरासत में ऋण प्राप्त करता है, अपनी सम्पूर्ण जिन्दगी उसी में व्यतीत करता है और अंत में उस "ऋण-भार" को अपने पुत्र को सौंप कर मर जाता है। आखिर ऋणग्रस्तता का क्या कराण है? अखिल भारतीय ग्रामीण सर्वेक्षण (1954) से यह स्पष्ट होता है कि ग्रामीण क्षेत्र के 60 प्रतिशत व्यक्ति महाजनों के कर्जे में अपने पूर्वजों से लेकर अपनी मृत्यु तक दबे थे। ये महाजन इन दुर्बल ग्रामीणों से अत्यधिक ब्याज लेने के साथ-साथ इन्हें बंधुआ मजदूरी करने को भी विवश करते थे। इस तरह इन्होंने पूरे ग्रामीण समाज को अपने शिकंजे में जकड़ा हुआ था।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात महात्मा गांधी ने सर्वोदय संघ की नींव इस हेतु डाली ताकि ग्रामीण समाज की उन्नति एवं उनका संर्वांगीण विकास हो सके। इतना ही नहीं सरकार द्वारा भी ग्रामीण क्षेत्रों की उन्नति एवं कृषि-विकास हेतु समय-समय पर विभिन्न योजनाएं कार्यान्वित की गईं। उदाहरणार्थ 1952 में सामुदायिक विकास कार्यक्रम, 1953 में राष्ट्रीय प्रसार सेवा एवं विकास खण्डों की स्थापना, 1966 में पंचायत राज की स्थापना, सहकारिता आन्दोलन, सहकारी भूमि बंधक बैंक, प्राथमिक कृषि साख समिति, किसान सेवा सहकारी समिति एवं वर्तमान में लघु कृषक विकास एजेंसी, सम्पूर्ण ग्रामीण विकास कार्यक्रम ट्राइसेम एवं स्पेशल कम्पोनेन्ट प्लान इत्यादि।

प्रारम्भ में बैंकों की सेवाएं केवल बड़े-बड़े शहरों तक ही सीमित थीं, कस्बे और गांव इससे पूर्णतया उपेक्षित थे। इधर ये निजी बैंक कुछ गिने चुने बड़े उद्योगों को ही वित्तीय सहायत प्रदान करते थे। वर्ष 1951 तक सभी प्रकार के बैंकों की संख्या मात्र 566 थी जो देश की जनसंख्या की तुलना में नगण्य थी। वर्ष 1976 के सर्वेक्षण से यह बात प्रकाश में आई कि सम्पूर्ण जनसंख्या के लगभग 75 प्रतिशत व्यक्ति कर्जों का लेन-देन महाजनों से करते थे एवं मात्र 25 प्रतिशत व्यक्ति ही बैंकों से लाभ उठा पाते थे। इस समस्या का समाधान ढूंढने के लिये बैंगलूर में कांग्रेस ने एक अधिवेशन किया। इस अधिवेशन में लिये गये निर्णय के आधार पर 19 जुलाई, 1969 में देश के 14 निजी व्यावसायिक बैंकों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया जो कि बैंकिंग इतिहास में एक महत्वपूर्ण कदम था। इसके साथ ही सरकार ने इन बैंकों का नियंत्रण अपने हाथों में ले लिया। देश के निर्माण में ग्रामीण इलाकों की भूमिका का महत्व आंकते हुए सरकार ने इन बैंकों का ध्यान ग्राम्य सुधार एवं कृषि विकास योजनाओं की ओर दिलाया। इसकी प्रगति यह रही कि जहां जून, 1969 में ग्रामीण इलाकों में बैंकों की मात्र 1832 शाखाएं थी, मार्च 1982 में बढ़कर 19,942 हो गई। फलस्वरूप ग्रामीण ऋणों का अनुपात जो कि जून 1969 में कुल ऋणों का मात्र 1.5 प्रतिशत था, मार्च 1982 में बढ़कर 10.6 हो गया एवं ग्रामीण जमाएं कुल जमा का 3.1 प्रतिशत से बढ़कर 12.4 हो गई।

लेकिन इस प्रगति से सरकार पूर्णरूपेण संतुष्ट नहीं हो पाई। इसका मुख्य कारण था सामान्य ग्रामीण वर्ग को छोटे-छोटे ऋण देने में बैंकों की असमर्थता। इसके अतिरिक्त इन बैंकों के समझ दूसरी समस्यायें ग्रामीण-क्षेत्रों में शाखाएं खोलने से संबंधित थी क्योंकि इन शाखाओं के रखरखाव, कर्मचारियों/अधिकारियों के वेतन एवं भत्ते आदि का भार बैंक वहन करने में अक्षम थे। इसका कारण था कि इतनी कम अवधि में ग्रामीण-वर्ग में रूपया-पैसा बैंक में जमा करने की प्रवृत्ति बहुत अधिक विकसित नहीं हो पाई थी। अतः ग्रामीण-क्षेत्रों में बैंकों की शाखाएं घाटा दे रही थीं। दूसरी तरफ विद्यमान सहकारी बैंक भी ग्रामीण क्षेत्रों में आवश्यकताओं की पूर्ति करने में पूर्णरूप से सफल नहीं हो पा रहे थे एवं सहकारिता में ऋण ढांचा, प्रबन्ध, ऋणोपरान्त निरीक्षण एवं ऋणों की वसूली आदि की स्थिति दयनीय थी और ये संस्थान पर्याप्त मात्रा में स्रोत संग्रह करने में भी असफल रहे थे, फलस्वरूप इनको मुख्य

रूप से भारतीय रिजर्व बैंक के पुनर्वित्त पर ही निर्भर रहना पड़ा था। अत: सरकार के समक्ष पुन: यह समस्या उत्पन्न हो गई कि ऐसी कौन सी वित्तीय संस्था खोली जाय जो ग्रामीण क्षेत्रों में अल्प व्यय पर अपनी शाखाएं खोलकर कृषक एवं निर्बल ग्रामीणों को छोटे-छोटे ऋण प्रदान कर सके एवं ग्रामों में प्रचलित महाजन-प्रथा का उन्मूलन कर सके।

ग्रामीण बैंकों की स्थापना

बैंकिंग आयोग द्वारा 1972 में प्रस्तुत की गई रिपोर्ट में यह सुझाव दिया गया कि सहकारी बैंकों एवं वाणिज्यिक बैंकों के गुणों का संगम करके ग्रामीण बैंकिंग संरचना की स्थापना की जाये। 1975 में भूतपूर्व वित्त मंत्री श्री सी.सुब्रह्मण्यम ने ग्रामीण उत्थान एवं कृषि विकास की समस्या पर ध्यान देते हुए क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना पर अपना मत व्यक्त किया। इस संबंध में 6 अगस्त, 1975 को समस्त मुख्यमंत्रियों/वित्तमंत्रियों की एक बैठक का आयोजन दिल्ली में किया गया। इस बैठक के निष्कर्षों एवं तत्कालीन बैंकिंग आयोग की सिफारिशों के आधार पर प्रधानमंत्री के 20 सूत्रिय कार्यक्रम के अधीन 26 सितम्बर, 1975 को राष्ट्रपति द्वारा "क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अध्यादेश, 1975" पारित किया गया, जिसके आधार पर गांधी जयन्ती 2 अक्तूबर, 1975 को भारत के उत्तर प्रदेश, हरियाणा, पश्चिम बंगाल एवं राजस्थान में 5 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की स्थापना की गई। देश में सर्वप्रथम खोला जाने वाला ग्रामीण बैंक उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जिले में "प्रथमा बैंक" के नाम से स्थापित किया गया। बाद में उपरोक्त अध्यादेश का स्थान 9 फरवरी, 1976 को संसद द्वारा पारित "क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक अधिनियम 1976" ने लिया।

ग्रामीण बैंकों के उद्देश्य

ग्रामीण बैंकों का प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण-क्षेत्रों में निवास करने वाले निर्बल वर्ग जैसे लघु/सीमान्त कृषकों, कृषक मजदूरों, भूमिहीन मजदूरों, ग्रामीण शिल्पकारों, भू-आवंटियों, लघु-व्यवसायियों, बेरोजगार नवयुवकों, थोक एवं फुटकर व्यापारियों, अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्यों आदि को कृषि एवं गैर-कृषि कार्यों हेतु कम से कम ब्याज पर छोटे-छोटे ऋण सुलभ कराना है, जिससे एक ओर ग्रामीण समाज महाजनों के चंगुल से मुक्त हो सके एवं दूसरी ओर ग्रामीणों का जीवन-स्तर ऊंचा उठ सके। अपने कार्य संपादन द्वारा उपर्युक्त लक्ष्यों की प्राप्ति हेतु ग्रामीण बैंकों के व्यय में मितव्ययता को ध्यान में रखते हुए यह प्रावधान किया गया है कि इन बैंकों में नियुक्त अधिकारियों एवं कर्मचारियों के वेतनमान एवं भत्ते आदि राज्य सरकार के तुलनात्मक समान स्तर के अधिकारियों एवं कर्मचारियों के बराबर रहेंगे।

प्रत्येक ग्रामीण बैंक की अभिदत्त पूंजी एक करोड़ रुपये तथा प्रदत्त पूंजी 25 लाख रुपये निर्धारित की गई है तथा बैंक पूंजी में भारत सरकार द्वारा 50 प्रतिशत, राज्य सरकार द्वारा 15 प्रतिशत एवं प्रवर्तक बैंक का 33 प्रतिशत अंशदान निर्धारित किया गया है। बैंक का प्रबंध एक निदेशक मंडल के हाथ में होगा, जिसमें एक अध्यक्ष जिसकी नियुक्ति भारत सरकार करेगी तथा अधिकाधिक 8 निर्देशक नियुक्त होंगे। इन बैंकों में जमा की जाने वाली राशि "डिपाजिट इंश्योरेंस एण्ड क्रेडिट गारंटी कार्पोरेशन" द्वारा सुरक्षित रहेगी। ग्रामीण बैंक आयकर अधिनियम, 1961 के अंतर्गत आय, लाभ या प्राप्तियों से कर मुक्त रहेंगे।

ग्रामीण बैंकों की प्रगति

1975 में ग्रामीण बैंकों की कुल संख्या 6 थी एवं इनकी कुल शाखाओं की संख्या 17 थी जो कि 30 जून, 1981 को बढ़कर क्रमश: 102 एवं 3784 हो गई है। दूसरे शब्दों में प्रति ग्रामीण बैंक, शाखाओं की संख्या जो कि 1975 में 3 थी, बढ़कर 37 हो गई । इन आंकड़ों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वास्तव में ग्रामीण बैंकों ने तीव्रगति से सम्पूर्ण भारत में अपनी शाखाओं में विस्तार करके ग्रामीण वर्ग के जीवन-स्तर को ऊंचा उठाने एवं उनकी आर्थिक आय को बढ़ाने में पर्याप्त रुचि दिखाई है। ऋणों के वितरण में भी ग्रामीण बैंकों की भूमिका सराहनीय रही है। जून 1976 के अंत में ग्रामीण बैंकों द्वारा दिये गये ऋणों की कुल बकाया राशि 1.5 करोड़ रुपये थी जो कि जून 1981 को बढ़कर 274 करोड़ रुपये हो गई। कुल बकाया राशि का 91 प्रतिशत भाग ग्रामीण बैंकों द्वारा छोटे एवं सीमांत कृषकों, कृषक मजदूरों एवं ग्रामीण शिल्पकारों के बीच वितरित किया गया। इसी प्रकार से इन बैंकों की जमाएं जून 1976 में 1.23 करोड़ रुपये से बढ़कर जून 1981 में 253 करोड़ रुपये तक पहुँच गई है।

1975 में ग्रामीण बैंक 5 राज्यों (उत्तर प्रदेश, बिहार, हरियाणा, राजस्थान एवं पश्चिम बंगाल) के

केवल एक जिले तक सीमित थे। 30 जून 1981 तक 18 राज्यों के 167 जिलों में 102 क्षेत्रीय ग्रामीण बैंकों की 3784 शाखाएं सुदूर ग्रामीण अंचलों में स्थापित की जा चुकी हैं जिनमें 44,30,827 जमा खातों में 25285.18 लाख रुपये की जमा राशि संग्रहित की जा चुकी है। इसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी रेखा से नीचे जीवन यापन करने वाले वर्गों के 24,00,720 व्यक्तियों को 30245.45 लाख रुपये की वित्तीय सहायता उपलब्ध करायी जा चुकी है।

ग्रामीण बैंकों की प्रगति की समीक्षा हेतु जून 1977 में भारतीय रिजर्व बैंक द्वारा एक समिति नियुक्त की गई थी। इस समिति ने यह समीक्षा प्रस्तुत की कि ग्रामीण बैंकों ने मात्र दो वर्ष की अवधि में उन उद्देश्यों को पूर्ण करने की सामर्थ्य प्रकट की है जिस हेतु उनकी स्थापना की गई थी। समिति ने यह निष्कर्ष निकाला कि इन बैंकों की स्थापना के कार्य में तीव्रता लायी जानी चाहिये। इस प्रकार का निष्कर्ष जेम्सराज समिति ने भी निकाला था। इन दोनों समितियों के निष्कर्ष के आधार पर भारत सरकार ने 5 जुलाई, 1978 को ग्रामीण बैंकों के विस्तार की नीति घोषित की।

सुझाव

ग्रामीण बैंकों के विकास को तीव्र करने के लिये एवं उनके सुचारू संचालन के हेतु निम्न सुझाव महत्वपूर्ण हो सकते हैं:-

1. सर्व प्रथम प्रत्येक ग्रामीण बैंक को अपने क्षेत्र से संबंधित अग्रणी बैंक के साथ अधिकाधिक सहयोग एवं समन्वय बनाये रखना चाहिये जिससे ऋणों से संबंधित नीतियां सही ढंग से निर्धारित की जा सकें। इसके अतिरिक्त कृषक एवं कृषि श्रम अभिकरण लघु कृषक विकास अभिकरण एवं सीमांत कृषक मजदूर, ग्रामीण शिल्पकार इत्यादि के साथ भी ग्रामीण बैंकों को उचित सम्पर्क बनाये रखना चाहिये।

2. ग्रामीण बैंकों द्वारा ग्रामीण अर्थव्यवस्था के विकास हेतु एवं ग्रामीण-वर्ग का जीवन स्तर ऊंचा उठाने हेतु अधिकाधिक ऋण देना चाहिये एवं साथ-साथ में उन ऋणों की अदायगी पर भी पूर्ण ध्यान देना चाहिये। सामान्यतः उत्पादन में हुई बढ़ोतरी का प्रयोग ऋणों की अदायगी में सहायक सिद्ध हो। बैंकों द्वारा प्रदत्त ऋणों के प्रयोग पर कड़ी निगरानी की व्यवस्था की जानी चाहिये।

3. ग्रामीण बैंकों की स्थापना के पश्चात् प्रायोजक बैंकों की संस्था में तो अवश्य वृद्धि हुई है फिर भी कुछ बैंक इन बैंकों की स्थापना के उद्देश्य एवं कार्य प्रणाली से संबंधित नहीं हैं। अतएव अनुसूचित बैंकों को इस हेतु शीघ्रातिशीघ्र प्रोत्साहित किया जाना नितान्त आवश्यक है ताकि ग्रामीण बैंकों के जाल का तीव्रगति से विस्तार किया जा सके। प्रायोजक बैंक के लिये यह हितकर होगा कि वह अपनी सामर्थ्य एवं आकार के आधार पर ही ग्रामीण बैंकों के विकास में सहयोग देवें।

ग्रामीण- विकास हेतु भारत में नियोजित ग्राम विकास नीति का आश्रय लिया गया है जिसके अन्तर्गत विभिन्न कार्यक्रम शुरू किये गये हैं। इसमें एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम उल्लेखनीय है। यह कार्यक्रम 2 अक्तूबर, 1980 से सम्पूर्ण देश के 5011 विकास खण्डों में संचालित किया जा चुका है। इस हेतु छठी पंचवर्षीय योजना के अंतर्गत केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा प्रदत्त योगदान के अतिरिक्त 3000 करोड़ रुपये संस्थागत वित्त के रूप में प्राप्त किये जाने की सीमा निर्धारित की गई है। 20 सूत्री कार्यक्रम के अंतर्गत राष्ट्रीय रोजगार कार्यक्रम एवं एकीकृत ग्रामीण विकास कार्यक्रम के विस्तार के साथ-साथ राष्ट्रीय स्तर पर ग्रामों के विकास हेतु अनेक योजनाएं सम्मिलित की गई हैं। इन समस्त योजनाओं को कार्यरूप में परिणित करने हेतु ग्रामीण बैंकों का विशेष दायित्व है। इस दशा में यह अपेक्षित है कि ग्रामीण बैंकों के विस्तार कार्यक्रम में तेजी लायी जाये ताकि ये बैंक अपने दायित्व पूर्ण ईमानदारी एवं कुशलता से निभा सकें।

द्वारा, श्री आर.डी. गुप्ता
डी-9 गणेश मार्ग
बापू नगर, जयपुर
302015, राजस्थान

ग्रामीण उद्योगों में संगठन की आवश्यकता

कमल टावरी

देश के विकास में उद्योगों का अपना महत्वपूर्ण स्थान है। भारी उद्योग निःसंदेह विकास की गति तथा दिशा के निर्धारक होते हैं लेकिन छोटे-छोटे उद्योग, विशेषकर ग्रामीण उद्योगों की भूमिका भी इस क्षेत्र में विशेष महत्व रखती है। स्वाभाविक है कि हमारा ध्यान जितना बड़े उद्योगों की ओर जाता है उतना ग्रामीण उद्योग की ओर संभव नहीं हो पाता। आज आवश्यकता इस बात की है कि जितने भी ग्रामीण उद्योग हैं उनको संगठित करके एक ऐसा आधार प्रस्तुत किया जाये जिससे जहां एक ओर स्थानीय आवश्यकता की प्रतिपूर्ति संभव हो सके वहीं दूसरी ओर ग्रामीण अंचलों में रोजगार के अवसरों में भी वृद्धि हो।

ग्रामीण उद्योगों के क्षेत्र में खादी ग्रामोद्योग बोर्ड की एक विशेष भूमिका रही है। इस समय बोर्ड द्वारा वित्त पोषित ग्रामीण उद्योग इकाइयों की संख्या लगभग 60 हजार है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्र में अन्य स्रोतों से वित्त पोषित इकाइयों की संख्या लगभग इससे दुगुनी होगी क्योंकि इन्हें वित्तीय सहायता बैंकों तथा जिला योजनाओं के साथ-साथ अन्य वित्तीय संसाधन उपलब्ध कराये जाने वाली संस्थाओं से भी प्राप्त होती है। इसके अतिरिक्त जिन्हें हम परम्परागत उद्यमी कहते हैं उनकी संख्या भी लाखों में है।

ग्रामीण उद्योग की विशेषतायें

यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि बृहत तथा मध्यम श्रेणी के उद्योग अपनी समस्याओं को दूर करने के लिए विभिन्न प्रकार से सक्षम हैं। उनके पास संसाधन की प्रचुरता के अतिरिक्त ज्ञान, संपर्क क्षमता, नीति निर्धारण में निपुणता, आवश्यक पहुंच तो है ही, साथ ही अन्य सभी प्रकार से वे सशक्त हैं। किन्तु ग्रामीण उद्योगों की ऐसी स्थिति है, जिनके कारण उनका विकास अपेक्षित गति से नहीं हो पाता है। इसके मूल में विकास के निमित्त आवश्यक आधार की कमी है। इनकी विशेषताएं निम्नलिखित हैं:-

(1) ग्रामीण उद्योग विकेन्द्रित होता है।
(2) इसके पास पूंजी तथा अन्य साधन अपेक्षाकृत काफी कम होते हैं।
(3) इसमें विशिष्ट जानकारी का अभाव होता है।
(4) भण्डारण क्षमता कम होती है।
(5) स्पर्धा का अभाव रहता है साथ ही इसमें तैयार किया गया माल गुणात्मक रूप से सदा अपेक्षित स्तर का नहीं होता है।
(6) ग्रामीण उद्योग अधिकतर व्यक्तिगत रूप से चलाये जाते हैं।

उपर्युक्त बिन्दुओं को दृष्टिगत रखते हुए यह आवश्यक है कि ग्रामीण उद्योगों को विकसित करने की दिशा में प्रभावी कदम उठाए जायें क्योंकि इनके अनेक लाभ हैं जैसे--कम पूंजी में अधिक व्यक्तियों को रोजगार का अवसर उपलब्ध होना, जिस स्थान विशेष पर या क्षेत्र में यह उद्योग स्थापित हैं वहां की स्थानीय आवश्यकता की पूर्ति, पर्यावरण प्रदूषण का कम होना, स्थानीय कच्चे माल का सदुपयोग, स्वास्थ्यप्रद वस्तुओं का निर्माण, मशीनीकरण कम तथा गांव से शहर की ओर पलायन को रोकना। इस परिपेक्ष्य में यह आवश्यक है कि ग्रामीण उद्योगों को और अधिक सुसंगठित बनाया जाये तथा इनको सशक्त आधार दिया जाये चूंकि ये उद्योग छोटी-छोटी इकाइयों में होते हैं अतएव इनसे यह अपेक्षा करना कि अपने स्तर से ये सुसंगठित हो जायेंगे, कदाचित वर्तमान संदर्भों में संभव नहीं है। इनके विकास तथा प्रसार के लिये शासन की मदद अनिवार्य है।

ग्रामीण उद्योग में न केवल परंपरागत उद्योग हैं वरन ऐसे भी उद्योग हैं जिनका आवश्यकतानुसार मशीनीकरण भी किया गया है। आशा यह की जाती है कि तकनीकी के विकास के कारण आने वाले दिनों में इन उद्योगों में आवश्यकतानुसार मशीनों द्वारा कार्य करने का विस्तार होगा। फलस्वरूप मांग और पूर्ति में संतुलन बनाये रखने की जरूरत भी पड़ेगी। यह तब ही संभव हो सकता है जब ग्रामीण उद्योगों का संगठन बनाया जाये। इससे योजनाओं के माध्यम से तथा अन्य स्रोतों से ग्रामीण उद्यमियों को सुविधायें ठीक प्रकार से मिल सकेंगी और उनके अपने उद्योगों में जो

कमियां होंगी उन्हें वे प्रभावी ढंग से दूर करने, समस्याओं का समाधान करने में सफल हो सकेंगे। कहने का तात्पर्य यह है कि ग्रामीण उद्योग के लिये संगठन की आवश्यकता अपरिहार्य है जो इनकी समस्याओं के समाधान के लिये उत्तरदायित्व का निर्वहन करेगा।

ग्रामीण उद्योग संगठन के निम्नलिखित कार्य हो सकते हैं:-

(1) सामान्य सुविधायें उपलब्ध कराना तथा विशेषज्ञों की जानकारी की व्यवस्था करना

ग्रामीण उद्योग के क्षेत्र में उपयुक्त तकनीकी सुधार तथा अनुसंधान होना आवश्यक है। इसके लिये तकनीकी जानकारी उपलब्ध कराना, काम करने के तरीके में विशिष्टता लाना, एक दूसरे के अनुभव का आदान प्रदान करना एवं बने हुये माल की बिक्री की समस्याओं तथा परिवहन आदि की जानकारी संगठन के माध्यम से की जा सकती है।

(2) जिला प्रशासन से संबंधित कार्यों का संपादन

किसी भी उद्योग के लिये जिला प्रशासन से बराबर संपर्क में रहना पड़ता है क्योंकि शासन के विभिन्न कार्यक्रम जिले में चलाये जा रहे हैं। ग्रामीण उद्योग संगठन शासन के कार्यक्रमों को न केवल सक्रिए रूप से ले सकता है बल्कि उनके विस्तार में भी सहयोग दे सकता है।

(3) शासन से संबंधित समस्यायें संगठित रूप से दूर करना

शासन के विभिन्न विभाग बिजली, बिक्रीकर, स्थानीय संस्थाएं विभिन्न प्रकार की सेवाएं उद्यमियों को देते हैं। ऐसा भी देखने में आता है कि उद्यमियों से मूल्य तथा शुल्क लेने के उपरान्त भी उन्हें पर्याप्त सुविधायें उपलब्ध नहीं हो पाती हैं। इन संगठनों के माध्यम से एक सुसंगठित कार्यक्रम की रूप रेखा बनाकर इन समस्याओं का समाधान किया जा सकता है। शासन स्तर पर विभिन्न नीतियां ग्रामीण औद्योगीकरण के संबंध में बनाई जाती हैं। इसके लिये यह आवश्यक है कि शासन स्तर पर नीति निर्धारण की पूर्ति तथा ग्रामीण उद्योग की समस्याओं की जानकारी की जाये तथा इससे संबंधित सुझाव भी ग्रामीण उद्यमियों से लिये जायें। यदि ग्रामीण उद्योगों से संबंधित सुसंगठित फोरम उपलब्ध रहे तो शासन को भी उनसे संबंधित समस्याओं आदि की जानकारी के साथ-साथ अच्छे सुझाव भी मिलेंगे, इससे कार्यक्रमों के नियोजन तथा निर्धारण की दिशा सही रहेगी।

उपर्युक्त से स्पष्ट है कि ग्रामीण उद्यमी संगठन जहां एक ओर ग्रामीण उद्योगों की सामान्य सुविधायें उपलब्ध कराने में प्रभावी भूमिका अदा करेगा वहीं दूसरी ओर और भी कई क्षेत्र हैं जिनमें यह महत्वपूर्ण योगदान कर सकता है।

संगठन का गठन

कुछ व्यक्तियों/संस्थाओं द्वारा संगठन बनाये जाने की आवश्यकता की अनुमति इसके गठित करने की दिशा में पहला कदम होता है। इसके लिए आवश्यक है कि सर्वप्रथम प्रत्येक जिले में उद्योग तथा क्षेत्र को दृष्टिगत रखते हुए ग्रामीण उद्योग के संगठन बनाये जायें। इस दिशा में खादी ग्रामोद्योग बोर्ड योगदान दे सकता है क्योंकि यह कार्य उनके प्रमुख कार्यों में से एक है। स्वैच्छिक संस्थाओं/सहकारी समितियों के माध्यम से खादी ग्रामोद्योग कार्यक्रमों को आगे चलाने के लिये जिला ग्रामोद्योग अधिकारी अपने जिले में ग्रामीण संगठन बनाने में महत्वपूर्ण योगदान कर सकते हैं।

जिला स्तर पर ग्रामीण उद्योग संगठन बनाने के पश्चात मण्डल तथा प्रदेशीय स्तर पर भी उद्योगवार संगठन बनाने की कार्यवाही की जा सकती है। ग्रामीण औद्योगीकरण का कार्य जनजीवन से सीधा जुड़ा हुआ है। इसमें अनेक कठिनाइयां भी हैं। इसलिये पूरा प्रयास करके ऐसे व्यक्तियों को इस क्षेत्र में नेतृत्व देने के लिये ढूंढना होगा जिनके माध्यम से यह कार्यक्रम कम समय में सफलतापूर्वक चलाया जा सके। इसमें महिलाओं/विकलांगों/सेवानिवृत्त फौजियों का योगदान भी लिया जाना चाहिए। ग्रामीण औद्योगीकरण की सफलता को संभव बनाने के लिये जरूरी है कि समन्वित रूप से हम सब मिलकर कार्य करें। साथ ही इससे संलग्न विभाग इसमें और अधिक सक्रियता से योगदान करें।

ग्रामोद्योग भवन
8- तिलक मार्ग
लखनऊ-226001

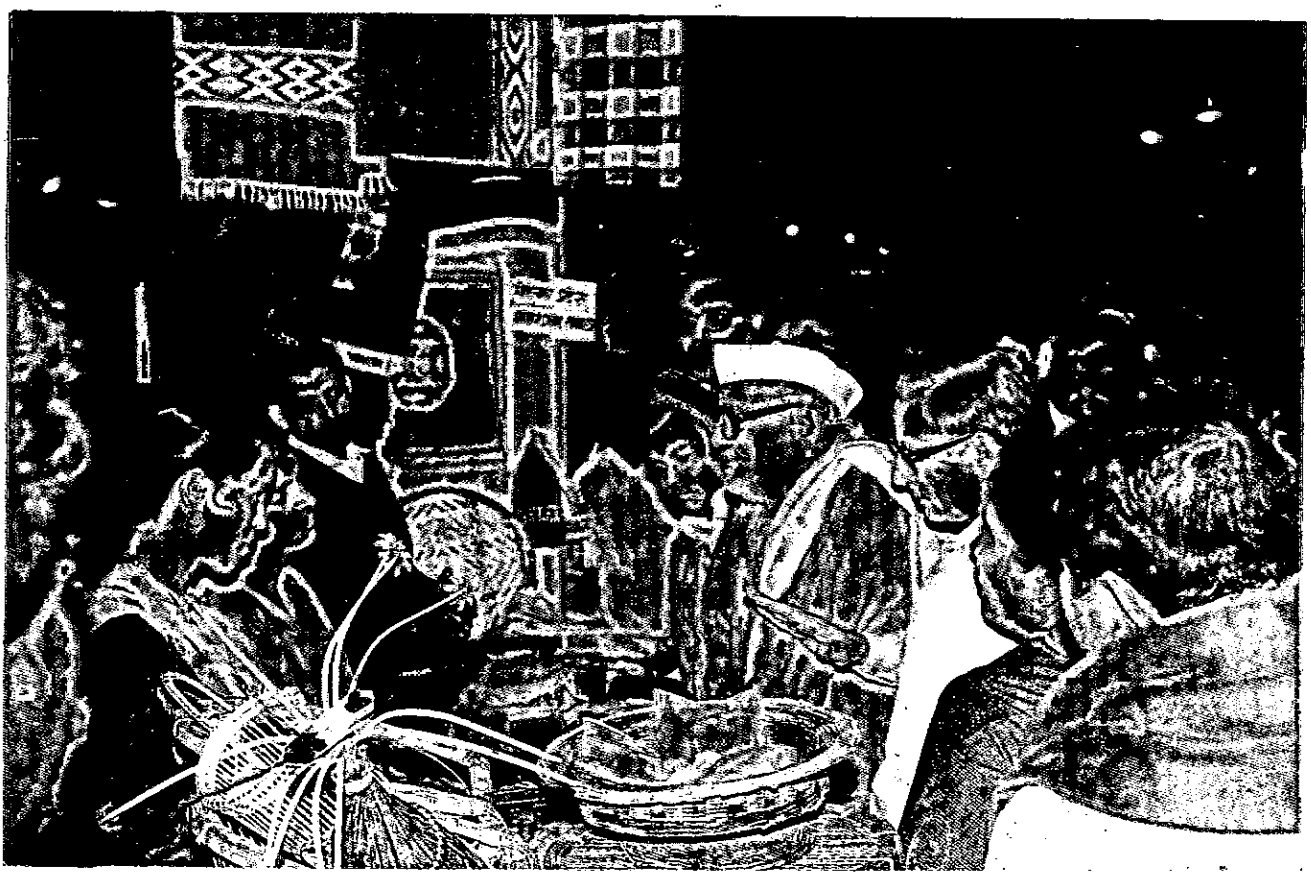

ग्रामीण विकास राज्य मंत्री, श्री रामानन्द यादव, हिमाचल प्रदेश के स्टाल पर आई.आर.डी.पी. के लाभग्राहियों से बातचीत करते हुए।

आर.एन./708/57
डाक-तार पंजीकरण संख्या : डी (डी एन) 98
पूर्व भुगतान के बिना एन.डी.पी.एस.ओ., नई दिल्ली में डाक में डालने की अनुमति (लाइसेंस) : यू (डी एन)-55
दिल्ली डाक

P & T Regd. No. D (DN) 98
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at NDPSO, New Delhi
Delhi Postal

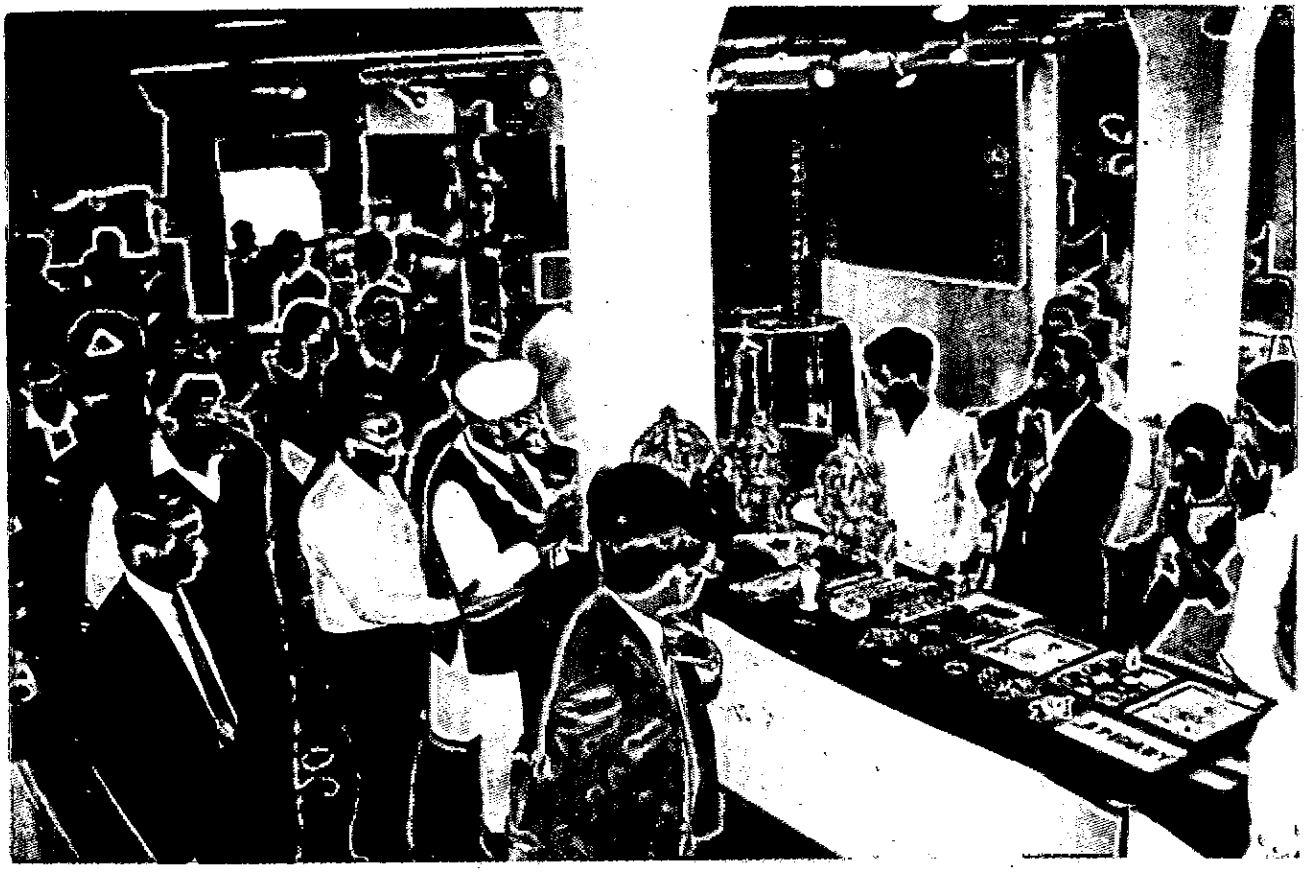

कृषि मंत्री, श्री गुरदयाल सिंह ढिल्लों, तमिलनाडु के स्टाल पर हस्तशिल्प द्वारा निर्मित वस्तुओं को देखते हुए।

डा. श्याम सिंह शशि, निदेशक, प्रकाशन विभाग, पटियाला हाऊस, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित और वीरेन्द्रा प्रिंटर्स, हरध्यान सिंह रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-110005 द्वारा मुद्रित